वर्ष ३ ओ३म् **भक्ति** ओ३म् संख्या ११

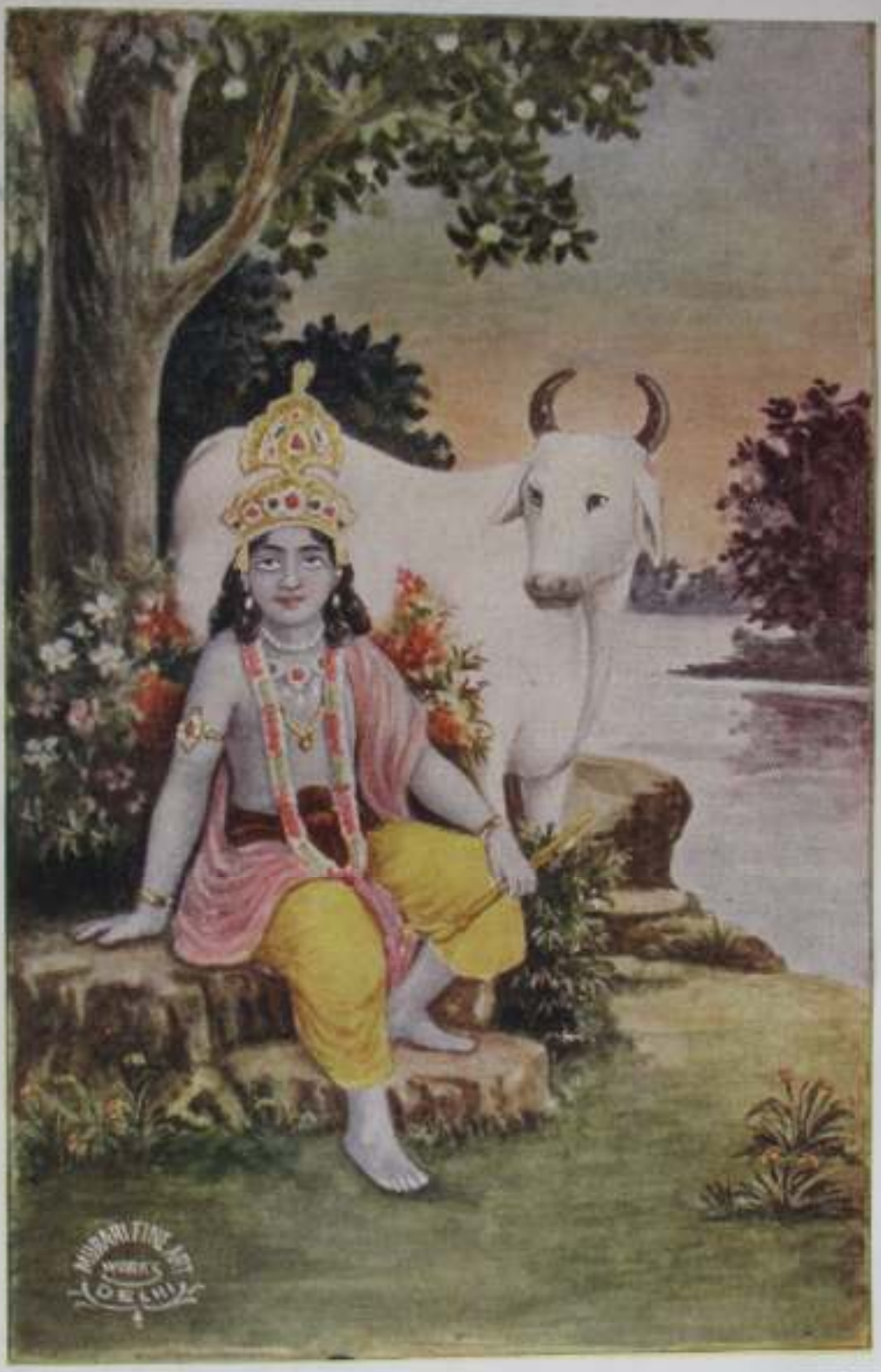

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द
श्रावण, १९८६

एक प्रति का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, ा वनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार ामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा ान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में क्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा जा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रका- ुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके ह और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. हरिहरात्मक स्तोत्र		३९६
२. भक्त को दुःख नहीं होता		३९७
३. श्याम कब आयेगें (कविता) [	ले० श्री० गंगाविष्णु पांडेय विद्याभूषण विष्णु	४००
४. भगवद्भक्ति (	ले० श्रीपूज्य भोलेबाबा जी अनूपशहर	४००
५. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश	[ले० भक्त शिरोमणी श्रीमथुरा प्रसाद जी जयपुर	४०६
६. भक्ति भेंट [	ले० श्री हरिकृष्ण दासजी गुप्त दिल्ली	४१०
७. श्याम वंदना (कविता) [	ले० श्री वैकुण्ठ प्रसाद वर्मा आर्यरत्न	४४५
८. शरण [	ले० श्री मदन-गोपाल जी सिंहल मेरठ	४११
९. आत्महित चिन्ता [	ले० श्री गंगा प्रसाद जी अग्नि होत्री जबलपुर	४१६
१०. भक्ति ही सर्वोपरि है [	ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी आगरा	४१८

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
ले० क० सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी, अमृतसर	१११)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	१०१
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	,,
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	,,
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	,,
बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना	,,
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	,,
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	,,
पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म कार्शीनाथ बच्चूमल गली परांवठा दिल्ली	,,
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	,,
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	,,
चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी	,,
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	,,
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	,,
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	,,
लक्ष्मी देवी खोसला धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	,,
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	,,
श्रीमती भक्तांणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी ,,	,,
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	२५)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मक्खी चमड़ूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेवेन्य मेम्बर गवालियर	५१)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावां	२५)
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	२५)

प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी
ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी २५)
ऐस० जे० राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट ,, ५१)
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली २५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर २५)
पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी २५)
चौ० जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंग २५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कोसली २५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी
बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ११)
रामप्रसाद जी झाड़सा ५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। ५)
चौ० शिवनाराणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहाबाद बैंक देहली। ५)
ला० देवकीनन्द जी फिरोजपुर ५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना ५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)
राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा ५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी ५)
ला० रामचन्द्र जी वैद्य ,, ५)
राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी ११)
बा० शिवरामसिंह जी ,, ७)
जमादार दीपचन्द जी ,, ५)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल १०)
ला० ओंकारमल जी कानपर ५)

चौ० गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल ११)
चौ० मनोहरसिंह जी „ पाल्हावास, रेवाड़ी ११)
ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली ११)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली ५)
भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, „ „
चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी ५)
पं० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां ५)
श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल ११)
ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली ५)
चौ० मूलचन्दजी गुरावड़ा जि० गुड़गावां ५)
बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ ११)
ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी ५)
सुमित्रादेवा ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी पान का दरीबा जैपुर ५)
माई गुलाबोदेवी दिल्ली

चतुर्थ वर्ष का पहिला अंक

भगवदांक होगा ।

इस मायावी युग में रात दिन प्रकृति के पदार्थों के पीछे दौड़ घूप करने वाले, अशान्त चित्त तथा शुष्क हृदय पुरुषों को भगवत् की ओर आकर्षित करने और उनके हृदयों में प्रेम और आनन्द की लहर उत्पन्न करके शान्ति स्थापित करने का जो उद्योग भक्ति ने आरम्भ किया है वह भक्ति के पाठक भली भांति जानते हैं । इस ही के सिलसिले में गतवर्ष भगवद्भक्तों के अमृत रूपी परम मनोहर चित्रों सहित चरित्र "भगवद्भक्तांक" के रूप में प्रकाशित किये थे। इसी प्रकार इस वर्ष भी नूतन वर्षारम्भ में स्वयं भगवच्चरित्र रूपी "भगवदांक" निकालने का निश्चय किया है । एतदर्थ तत्त्ववेत्ता सन्त महात्माओं, भक्तों तथा विद्वानों से लेख मंगाने का प्रबन्ध किया गया है। इसमें एक दर्जन तिरंगे और इकरंगे चित्र होंगे तिस पर भी मूल्य केवल ।।।) मात्र ही रक्खा गया है । यह पत्र स्थाई ग्राहकों को बिना मूल्य ही मिलेगा परन्तु पृथक् लेने वालों को ।।।) में मिलेगा । लाभ का सौदा है । अभी से २) देकर ग्राहक बनने पर आपको ।।।) का तो भगवदांक ही मिल जायगा और शेष तीनों अंक १।) में ही रहे । इसलिये स्थाई ग्राहकों को शीघ्रता करनी चाहिये और २) मनि आर्डर द्वारा भेज कर स्थाई ग्राहकों में नाम लिखा लेना चाहिये । ग्राहकों की सेवा में भी निवेदन है कि वह अपने इष्टमित्रों में से कम से कम दो दो ग्राहक बनाने की कृपा करें । इससे भक्ति का परिवार सहज में ही द्विगुण त्रिगुण हो जायगा । आशा है ग्राहकानुग्राहक इस प्रार्थना पर ध्यान देकर दो दो ग्राहक बनाने का प्रयत्न करेंगे । भगवत् आपके इस शुभ कार्य में सहायक हों ।

सम्पादक

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

Lakshmibilas Press, Calcutta.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क ११

हरिहरात्मक स्तोत्र।

शिवाय विष्णु रूपाय विष्णवे शिव रूपिणे।
यथान्तरं न पश्यामि तेन तौ दिशतः शिवम् ॥ १ ॥

विष्णु रूप शिव के लिये और शिव रूप विष्णु के लिये (प्रणाम है) मैं उनमें भेद नहीं देखता हूं इस कारण वे मेरा कल्याण करें ॥ १ ॥

यो विष्णु स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एकामूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥ २ ॥

जो विष्णु हैं वह रुद्र हैं जो रुद्र हैं वह पितामह हैं, मूर्ति (आत्मा) एक है और रुद्र विष्णु पितामह तीन देव हैं ॥ २ ॥

वरदा लोक कर्त्तारो लोकनाथा स्वयम्भुवः।
अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः ॥ ३ ॥

ये वर देने वाले हैं लोक रचने वाले हैं लोक के स्वामी और स्वयम्भू हैं, और ये अर्धनारीश्वर तीनों देव तीव्र व्रत में परायण रहते हैं ॥ ३ ॥

यथा जले जलं क्षिप्तं जल मेव तु तद्भवेत् ।
रुद्रं विष्णुः प्रविष्टस्तु तथा रुद्रमयो भवेत् ॥ ४ ॥

जिस प्रकार जल जल में फैंकने पर जल ही हो जाता है, इसी प्रकार रुद्र में प्रविष्ट हुये विष्णु रुद्र मय ही हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अग्निमग्निः प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत् ।
तथा विष्णु प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत् ॥ ५ ॥

अग्नि में प्रविष्ट हुवा अग्नि जिस प्रकार अग्नि हो जाता है इसी प्रकार विष्णु में प्रविष्ट हुये रुद्र विष्णुमय हो जाते हैं ॥ ५ ॥

रुद्रमग्निमयं विद्याद्विष्णुः सोमात्मकः स्मृतः ।
अग्नि सोमात्मकं चैव जगत् स्थावर जंगमम् ॥ ६ ॥

रुद्र को अग्निमय जाने विष्णु सोमात्मक कहलाते हैं, यह स्थावर जंगमात्मक जगत् अग्नी सोमात्मक अर्थात् भोक्तृ भोज्यात्मक है ॥ ६ ॥

कर्तारौ चाप हर्तारौ स्थावरस्य चरस्य च ।
जगतः शुभ कर्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरौ ॥ ७ ॥

यह दोनों स्थावर और चर जगत् के कर्ता और नाश करने वाले हैं, जगत् का कल्याण करने वाले हैं, प्रभावान् और महेश्वर हैं ॥ ७ ॥

कर्तृ कारण कर्तारौ कर्तृ कारण कारकौ ।
भूत भव्य भवौ देवौ नारायण महेश्वरौ ॥ ८ ॥

कर्ता (हिरण्यगर्भ) और कारण (महाभूतों) के रचने वाले हैं, और उनके कारक भी हैं, अर्थात् उन से कर्म कराने वाले भी हैं यह दोनों नारायण और महेश्वर देव भूत भविष्य वर्तमान रूप हैं ॥ ८॥

देवौ हरि हरौ स्तोष्ये ब्रह्मणा सह संगतौ ।
एतौ च परमौ देवौ जगतः प्रभवाप्ययौ ॥ ९ ॥

मैं ब्रह्माकी साथ मिले हुए हरि और हरदेव की स्तुति करता हूं, यह दोनों परम देव जगत की उत्पत्ति और प्रलय करने वाले हैं ॥ ९ ॥

रुद्रस्य परमो विष्णु र्विष्णोश्चपरमः शिवः ।
एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यशः ॥ १० ॥

विष्णु रुद्र से श्रेष्ठ हैं रुद्र विष्णु से श्रेष्ठ हैं यह एक ही दो हुए सर्वदा संसार में विचरण करते हैं ॥

न विना शंकरं विष्णु र्न विना केशवं शिवः ।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा ॥ ११ ॥

शंकर के विना विष्णु नहीं रह सकते और केशव के विना शिव नहीं रह सकते क्योंकि ये दोनों रुद्र और उपेन्द्र पहले एक ही थे ॥ ११ ॥

भक्त को दुःख नहीं होता

चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण के पूर्व की एक घटना है। कभी २ श्री गौराङ्ग श्रीवास के घर स्वेच्छा से कीर्तन करने जाया करते। इसी तरह एक दिन वहां गये और देखा कि श्रीवास के घर के आंगन में सैकड़ों भक्त नृत्य-कीर्तन कर रहे हैं। श्री गौराङ्ग आए हैं किन्तु इस आनन्द में किसी को बाह्य ज्ञान नहीं है। श्रीवास का आनन्द तो सर्वापेक्षा अधिक है क्योंकि उसके आंगन में कीर्तन होरहा है। इसी समय एक दासी आकर त्रस्त भाव से श्रीवास को घर के भीतर बुलाकर लेगई।

श्रीवास के एक बालक पुत्र है जिसे सांघातिक रोग हो रहा है। भीतर रमणीगण उसकी सेवा शुश्रूषा व रोग निवारण की उपाय कर रही हैं और श्रीवास बाहर प्रभु के संग नृत्य कीर्तन कर रहे हैं। उनका एक मात्र पुत्र सांघातिक रोग से ग्रसित मरण शय्या पर पड़ा हुवा है लेकिन श्रीवास के मनमें इस की कोई ऐसी चिन्ता नहीं है। वे चिन्ता करेंगे भी क्यों ? जिनके वे स्वयं तथा उनका पुत्र है और जो जीव मात्र की गति है वेही उसके आंगन में नृत्य कर रहे हैं। इसी लिये श्रीवास रोग ग्रसित पुत्र को घरकी स्त्रियों के भरोसे छोड़ कर निश्चिंत हो बाहर आकर नृत्य संकीर्तन कर रहे हैं।

दासी के बुलाने से श्रीवास तुरत घर के भीतर गए। उस समय केवल चार दंड रात्रि हुई थी। पुत्रके पास जाकर देखा कि इसका अन्तकाल आ उपस्थित हुवा है। उस समय उसे बड़े यत्न से तारकब्रह्म मंत्र सुनाना आरम्भ किया है। पुत्र की माता प्रभृति रोना पीटना आरम्भ करने लगी लेकिन श्रीवास ने बड़े विनीत भाव से उन्हें ऐसा करने से निवारण किया। वे बोले कि जिसका नाम श्रवण मात्र से महा पातकी भी नित्यधाम में पहुंच जाता है वेही भगवान् स्वयं हमारे आंगन में नृत्य कर रहे हैं। हमारे पुत्र के जैसे भाग्य हैं उसका लोभ ब्रह्मादिक को भी होता होगा। यदि तुम लोगों का इस पर

वास्तविक स्नेह है तब तुम लोगों को ऐसे अवसर पर आनन्द उत्सव मनाना चाहिए। यह शुभक्षण में जन्मा था इसीसे नृत्यकारी श्रीभगवान् के सन्मुख देह त्याग कर रहा है यह सोच कर मेरा हृदय आनन्द से पुलकित हो रहा है। तुम लोग दुर्बल हृदय स्त्री लोग हो यदि मेरी इस बात से सान्त्वना न हो तो किसी प्रकार भी मेरी इस बात को मान कर कुछ समय के लिए क्रन्दन स्थगित रक्खो जिससे कि बाहर जो भक्तगण हैं वे इस घटना को न जान पावें कारण इसके प्रकट होनेसे सबके हृदय में दुःख की तरंग उठने लगेगी जिस से हमारे प्रभु का आनन्द रस भंग हो जायगा। यदि तुम लोगों का क्रन्दन सुन प्रभु का आनन्द रस भंग हुवा तब निश्चय समझो कि मैं गंगा में डूबकर प्राण त्याग करदूंगा।

कलरव सुनि यदि प्रभु बाह्य पाय।
तबे त गंगाय प्रवेशिमु सर्व्वथाय॥

(चैतन्य भागवत)

यह बात सुनकर श्रीवास की गृहणि याने मृत पुत्र की माता और घर की अन्यान्य स्त्रियें कुछ समझ कर, कुछ अनुरोध से और कुछ भय से क्रंदन रोक, मृत पुत्र को भीतर के आंगन में घेर कर बैठ गईं और यह सम्वाद किसी को जानने नहीं दिया।

श्रीवास के मन में बड़ा डर लगा हुवा है कि यदि कोई भी भक्त इस बात को जान जायगा तो क्रम से यह घटना सब पर प्रकट हो जायगी और अन्त में प्रभु का नृत्य भंग हो जायगा। अतएव यह घटना किसी को जानने न दूंगा' इस निमित्त तत्कालीन मृत पुत्र को मृत्तिका पर छोड़ प्रसन्न वदन व प्रफुल्लित अन्तःकरण से श्रीवास बाहर आ कीर्तन समाज में सम्मिलित हो दोनों बांह उठा कर 'हरि बोल हरि बोल' उच्चारण करते हुए पूर्ववत् नृत्य करने लगे।

फलतः यह घटना कोई भी न जान पाया। किन्तु यह बात बहुत देर तक कैसे गुप्त रह सकती थी, क्रम से प्रकाश होने लगी। जिसने भी यह सम्वाद सुना वही नृत्य शान्त कर चित्र पुत्तलिका की तरह स्थित हो श्रीवास के मुख की तरफ देखने लगा। उनका ऐसा अद्भुत व्यापार देख भक्तगण फिर श्रीगौरांग के मुख कमल की तरफ देखने लगे और विचारने लगे, "प्रभु! यह आप का ही कार्य है आप को छोड़ दूसरा कौन ऐसा करने में समर्थ हो सकता है? यह श्रीवास आप का एकान्त प्रिय है इसके हृदय में आप को छोड़ और कुछ भी नहीं है। वही आप इसके आंगन में नृत्य कर रहे हैं और आपने ही इसका पुत्र हरण किया है। लेकिन इससे आपके प्रति इसका चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ किन्तु मालूम होता है कि श्रीवास के हृदय में आनन्द समाता ही नहीं है। आप को धन्य है आप के भक्त को भी धन्य है।

वास्तव में जिनका चित्त माया जाल से आबद्ध है वह ऐसा कह सकते हैं कि प्रभु ने यह कार्य ठीक नहीं किया। जब वे श्रीवास के घर में नृत्य कर रहे थे कम से कम उनके सामने उस समय तो उसके घर में कोई विपत्ति नहीं आने देनी चाहिए थी। किन्तु हे मुग्ध जीव! तुम या हम भगवान नहीं हैं और न हम लोग श्रीवास ही हैं। हम उनके महत्व को नहीं जान सकते। श्रीवास की इस घटना से संसार में यह एक नई बात होगई जो पहिले कभी नहीं हुई थी। इस घटना से लाखों मनुष्यों को सर्वदा शिक्षा मिलती रहेगी। इस अवतार की सब

लीला ही जीव को शिक्षा देने के निमित्त है। इससे भगवान् ने दिखा दिया कि जिसे तुम लोग दुःख समझते हो वही भक्त के लिए सुख है। पुत्र शोक से बढ़ कर और कोई दुःख नहीं है। किन्तु श्रीवास ने ऐसा विषम आघात सहकर लोगों को दिखा दिया कि भक्ति क्या चीज है। तब भी ऐसा कहा जासकता है कि भगवान ने श्रीवासको इतना दुःख क्यों दिया। लेकिन वास्तव में श्रीवास को तनिक भी दुःख नहीं हुवा। जिसके मन में ऐसा दृढ निश्चय है कि भगवान हमारे आंगन में नृत्य कर रहे हैं उसका पुत्र शोक क्या बिगाड़ सकता है। यदि हम लोगों को भी ऐसा ध्रुव विश्वास होता तो ऐसी अवस्था में हमें भी दुःख न होता। फिर भी यह बात सब को जाननी उचित है कि भक्त लोग इस समय को स्वप्न सदृश मानते हैं। केवल परकाल को ही वे वास्तविक मानते हैं। उनके लिए मृत्यु चिर-वियोग नहीं है। उनके लिए तो मृत्यु नूतन जीवन और प्रियतम से चिर-मिलन है।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीवास के मृत पुत्र की खबर सुनकर भक्त नृत्य शांत कर, स्तम्भित हो, एक बार श्रीवास के मुख की तरफ और एक बार प्रभु के मुख की ओर देखने लगे। इस तरह एक २ करके क्रम से सब का नृत्य शांत हो गया। साथ साथ मृदङ्ग करताल आदि की ध्वनी भी बन्द होगई। जब सभी कोलाहल बंद होगया तब श्रीगौराङ्ग को बाह्य ज्ञान हुआ और भक्तों की तरफ देख कर बोले कि मेरा अन्तर आज क्यों रोरहा है? उपरान्त श्रीवास की तरफ देख कर बोले "पण्डित! क्या तुम्हारे घर में कोई दुर्घटना हुई है, आज मुझे कीर्तन में आनन्द क्यों नहीं होता? मेरे प्राण क्यों रो रहे हैं?"

श्रीवास बोले, "प्रभु! जब आप मेरे घर पर हैं तब फिर दुर्घटना कैसी?"

प्रभु को इस बात का विश्वास नहीं हुवा और भक्तों से जिज्ञासा करने लगे कि तुम लोग शीघ्र बतावो क्या पंडित के घर में कोई विपद आई है।

भक्तगण भी आपस में एक दूसरे का मुख देखने लगे। प्रभु को ऐसा दुःखद समाचार सुनाना किसी ने भी नहीं चाहा? लेकिन अन्त में कहना ही पड़ा? भक्तगण बोले, "श्रीवास के पुत्र का परलोक गमन हुवा है यह सुन कर प्रभुने पूछा कि कितनी देर हुई।

इस पर भक्त बोले कि यह घटना हुये चार दंड रात्रि बीत चुकी।

यह सुन कर श्री गौराङ्ग, श्रीवास के मुख की तरफ देखने लगे और उसका प्रसन्न मुख देख कर बड़े आनन्दित हुये। प्रभु बोले, "श्रीवास! तुम धन्य हो आज तुमने श्रीकृष्ण को खरीद लिया। प्रभु अब और धैर्य धारण नहीं कर सके। उनका हृदय उथलने लगा। अश्रुपूर्ण नयनों से स्वयं ही कहने लगे, "मैं ऐसा संग कैसे त्याग करूंगा। ऐसे व्यक्ति का संग त्याग करना होगा यह स्मरण करते ही मेरा हृदय विदीर्ण हुवा जाता है।" यह कह कर श्री गौराङ्ग अवनत मस्तक हो अनेक देर तक रुदन करते रहे। श्रीवास प्रभुको शान्त करने लगे और बोले, "प्रभु! पुत्रशोक सह सकता हूं किन्तु आपके नयनों में जल नहीं देख सकता। प्रभु! शान्त होइये! मुझे दुःख नहीं है, दुःख की सम्भावना भी नहीं है।"

इस पर श्री गौराङ्ग ने आंखे बंद करली और कुछ शान्त हुये। सब ने मिल कर मृत शिशु को

भीतर से बाहर ला सुला लिया। उस समय प्रभु उसके पास जा उसे जीवित की तरह प्रश्न करने लगे। प्रभु के प्रश्न करते ही मृत देह में प्राणों का संचार होने लगा और शिशु, ने बोलना आरम्भ कर दिया। यह अद्भुत कार्य देख कर सभी वहां चले आये। श्रीवास के अन्यान्य परिवार वर्ग और भक्तगण सब उस मृत शिशु को घेर कर खड़े होगये। प्रभु की इच्छानुसार मृत शिशु ने उत्तर दिया, "मेरा इस जगत का कार्य शेष होगया है इसलिये अब मैं इससे उत्तम स्थान में जारहा हूं। प्रभु! आप कृपा करिये जिससे आपके चरणों में रति बनि रहे।" इतना कह कर उस मृत शिशु की आत्मा उसका देह त्याग कर चला गया

मृत शिशु के मुह के वचन सुन कर उसकी जननी पर्यन्त शोकको भूल गई। श्रीवास के चार भाईयों ने एकदम प्रभुके चरणों में गिर फिर एक बार देह गृह, प्राण, मन बुद्धि उनके समर्पण किया।

प्रभु बोले, श्रीवास जब संसार में आये हो तब तुम्हें भी इसके नियम पालने होंगे। किसी किसी को तो संसारिक दंड से बड़ा क्लेश होता है किन्तु तुम तो उसके सर्वथा बाहर हो फिर भी तुम हमारे निजजन हो इसलिये तुमको कुछ सान्त्वना वाक्य कहना चाहिये। तुम्हारा एक पुत्र परलोक गत हुआहै अब मैं और श्रीपाद नित्यानन्द तुम्हारे पुत्र रहे।"

ऐसे वचन सुन कर सभी श्रीवास के भाग्य की सराहना करते हुये हरि ध्वनि करने लगे और मृत देह को लेकर उसका संस्कार करने चले गये।

(अमिय निमाई चरित्र से)

श्याम कब आयेंगे।

[गंगा विष्णु पाण्डेय विद्याभूषण "विष्णु"]

(१)

ज्ञान कांड की कथा में पूर्ण हो भलेही किंतु,
भक्ति सिंधु की कभी न थाह आप पायेंगे।
गोपियों की प्रेम अश्रुकी नदी में उद्धवजी,
सत्य मानिये अवश्य डूब आप जायेंगे।
गोपियां कहीं जो एक साथ रो उठेंगी फिर,
लौट के संदेश ले कभी न आप आयेंगे!
गोपियों की कृष्ण भक्ति के मुकाबिले में 'विष्णु'
सोच लीजिये सदैव हार आप खायेंगे।

(२)

दूध दर काके और छाछको गिराके कृष्ण,
गोपियों का माखन चुराके कब खायेंगे?
मीठी तान गाके औ रिझाके मंडली को कब,
बैठके कदंब पर बांसुरी बजायेंगे।
मांगेंगे दही का दान छेड़ेंगे गली में आन,
घेर घार कर कब गालियां सुनायेंगे।
बादमें उन्हीं की दिन रात बीतती है 'विष्णु'
ऊधव कहो तो कब श्याम बृज आयेंगे।

भगवद्भक्ति

कथा वारमुखी की।

[ले० श्री पूज्य भोले बाबा जी अनूपशहर]

दक्षिण देश में बलाद नाम का एक नगर है। वहां वारमुखी बहुत धन वाली रहती थी। उसके

द्वार पर एक वृक्ष था। वृक्ष की हरी छाया के नीचे एक बहुत ही सुन्दर वेदी बनी हुई थी। एक दिन कुछ साधु लोग वृक्ष के नीचे टिक गये। संध्या के समय बारमुखी द्वार पर आई और इस डर से कि कहीं साधु लोग मेरा नाम सुन कर उठ न जांय, घर में जा छुपी। रात के समय कुछ मोहर और रुपये एक थाली में रख कर साधुओं के पास आई और दंडवत् करके थाली भेंट दी। साधुओं ने जाति और धन का वृत्तांत सुन कर उपदेश दिया कि एक मुकुट बना कर रंगनाथ जी को भेंट कर तब धन शुद्ध हो जायगा। यह सुन कर बारमुखी ने तीन लाख रुपये का जड़ाऊ मुकुट बनवाया और बड़ी प्रीति और विश्वास सहित नाचती गाती, बाजे बजवाती हुई मुकुट लेकर चली जब श्री रंगनाथ के मन्दिर के समीप पहुंची तो रजोधर्म हो गया। ऐसा देख कर शोक से विकल होकर गिर पड़ी। उसके प्रेम को अंतर्यामी प्रभु ने जान लिया। पुजारियों को आज्ञा हुई। पुजारी आकर उसको प्रभु के समीप ले गये। जब मुकुट पहिनाने को हाथ उठाया, तो सिंहासन ऊंचा होने के कारण हाथ न पहुंचा। बारमुखी सोचती ही रही, रंगनाथ जी ने अपना शिर झुका दिया और उस बड़भागिनी ने मुकुट पहिना दिया। महा बड़भागिनियों में उसकी गणना हुई! सच है क्षण मात्र के सत्संग की यह महिमा है!

कुण्डली

भजिये नित श्रीरंग जी, कीजे सज्जन संग।
महिमा सज्जन संग की, दिखलाई श्रीरंग॥
दिखलाई श्रीरंग, शीश नीचा करि लीन्हा।
बारमुखी निज हाथ, मुकुट शिर पहिना दीन्हा॥
भोला! करि सत्संग, संग दुर्जन का तजिये।
रहिये सदा अलंग, रंगजी निश दिन भजिये॥

कथा तिलोचन देव की।

तिलोचन देव वैश्य वर्ण ज्ञान देव के शिष्य विख्यात भगवद्भक्त हुये हैं। यह विष्णु स्वामी संप्रदाय में थे। साधु सेवा में इनको विशेष प्रेम था। एक स्त्री और आप घर में दो ही प्राणी थे। सदा ऐसी चिन्ता किया करते थे कि कोई नोकर ऐसा मिल जाय कि साधुओं के मन की रुचि जान २ कर उनकी सेवा किया करे तो बहुत ही अच्छा हो। भागवत् की इच्छा पूर्ण करने के लिये भगवत् स्वयं टहलुवे का रूप बना कर टूटी जूती, फटी धोती, मैला साफा बांका तिरछा बंधा हुआ आन पहुंचे। तिलोचन जी ने माता पिता का नाम घर का पता पूछा तो भक्त वत्सल सूखे से मुख से कहने लगे। 'अजी! मेरे तो घर है, न चूरा है, न मैया है, न बाप है, आप ही आप हूं, टहलुआ हूं, पांच सात सेर खाता हूं, चारों वर्णों की रीति रिवाज जानता हूं, भक्तों की सेवा भक्तों की रुचि अनुसार कर सक्ता हूं। अंतर्यामी मेरा नाम है सेवा करना मेरा मुख्य काम है! पेट भर खाने को मिलेगा तब तक मैं आपकी और भक्तों की टहल करूंगा, यदि किंचित् भी रोटी खिलाने में मन बिगाड़ा तो उसी दिन चल दूंगा। तिलोचन जी प्रसन्न हो गये, स्नान करा कर, कपड़े बदलवा कर भक्तों की सेवा सौंपदी। अन्तर्यामी ने तेरह मास तक साधुओं की ऐसी सेवा की कि तिलोचन जी का नाम दूर २ तक विख्यात हो गया। एक दिन तिलोचन जी की स्त्री पड़ोसन के घर गई। पड़ोसिन बोली 'बहिना! ऐसी दुर्बल

क्यों हो गई है ? तिलोचन की स्त्री बोली 'बहिना ! क्या बताऊं, मेरे स्वामी ने एक टहलुआ रख लिया है, काम तो खूब करता है, पर खाता बहुत है, रात दिन पीसते २ और रोटी पोते २ नाक में दम आ जाता है! इतना मुख से निकला ही था कि अंतर्यामी अन्तर्धान हो गये। तिलोचन जी को बड़ा शोक हुआ, तीन दिन तक अन्नजल बिना पड़े रहे तब आकाश वाणी हुई 'हे तिलोचन जी ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिये मैं ही टहलुआ बन गया था, यदि अब भी तुम्हारी इच्छा हो, तो तैयार हूं ! तिलोचन जी पश्चात्ताप करने लगे 'ओ हो ! मैंने कैसा दुष्ट कर्म किया कि भगवत् को अपना चाकर समझा ! सन्तों के समझाने से तिलोचन जी भगवत् की सेवा स्मरण करने में यथापूर्व लीन हुये।

कुण्डली

संतन सेवी भक्तवर हुये तिलोचन देव।
भगवत् जिनकी देखि रुचि, कीन्ही हरिजन सेव॥
कीन्ही हरिजन सेव, भांति बहु दीन बड़ाई।
किया नाम विख्यात, कीर्ति दश दिश फैलाई॥
भोला करि विश्वास सत्य सिद्धांत सनातन।
भगवत सो ही संत, पूजि भगवत सम संतन॥

कथा जस्सू स्वामी की।

जस्सू स्वामी गंगा और यमुना के बीच के देश में किसी ग्राम में रहते थे। पूर्ण भगवद्भक्त थे। जो कुछ खेती से लाभ होता, साधु सेवा में खर्च देते थे। एक दिन चोर उनके बैल चुरा ले गये। भगवत् ने जैसे व्रज में बछड़े बालक रच कर ब्रह्मा का मोह दूर कर दिया था वैसे ही जस्सू स्वामी के यहां बैल प्राप्त कर दिये। चोरों ने आकर देखा तो वे ही बैल खड़े पाये। घर दौड़े गये तो वहां भी वे ही बैल देखे फिर आकर देखा तो वे ही बैल दिखाई पड़े। कई बार दौड़े, यहां और वहां बैल मौजूद देख कर बड़े चकित हुये और स्वामी जी से सब वृत्तांत कहा। स्वामी जी बोले "भाई ! ये भगवत् के चरित्र हैं, तुम अपना काम करो हम अपना काम करते हैं। चोरों ने बैल लाकर स्वामीजी को दे दिये। माया के बैल गुम हो गये। चोर चोरी का धंधा छोड़ कर स्वामी जी के शिष्य हो गये और भगवद्भजन करने लगे।

कुण्डली

स्वामी जस्सू जी भये, हरि भक्तन में भूप।
भगवत् जिनकी भक्ति वश, लीला कीन्ह अनूप॥
लीला कीन्ह अनूप, चोर आ बैल चुराये।
माया के रचि बैल, श्याम सुन्दर दिखलाये॥
बैल दिये आ चोर, भक्त हरि हुये अकामी।
भोला भज श्रीकृष्ण, भक्त सेवक जग स्वामी॥

कथा सेन भक्त की।

सेन भक्त जाति के नाई स्वामी रामानन्द के शिष्य माधवगढ के रहने वाले परम प्रेमी भक्त थे जैसे गौ अपने बछड़े का पालन करती है इसी प्रकार सेन भक्त की पालना भगवत् ने की थी। बात यह है कि एक दिन सेनभक्त राजा के तेल लगाने जाते थे, मार्ग में साधु मिल गये। सेनभक्त उनको अपने घर पर लाकर भोजन आदि सेवा में लग गये। राजा का भय न रहा। जब राजा की सेवा का समय हुआ तो भगवत् स्वयं सेन-

भक्त का रूप धारण करके तेल मर्दनादि राजा की सेवा कर के राजा को प्रसन्न करके चले आये। पीछे सेन पहुंचे और विलम्ब होने का अपराध क्षमा कराने लगे। भगवन् का स्पर्श होने से राजा भक्ति का प्रभाव जान गया था, सेन के चरणों में गिर पड़ा और उनका शिष्य होकर भजन करने लगा। अब तक राजा के वंश में सेन वंश के शिष्य होते हैं।

कुण्डली

सुन्दर सेन चरित्र सुनि, करि हरिजन विश्वास।
हरि भजन की ले शरण, तज दे सबकी आस॥
तजदे सबकी आश, आश बलवत्तम फांसी।
मारत बारम्बार मारि करवावत हांसी॥
जा भगवत् के द्वार, मूढ मत भटके दर दर।
भोला करि विश्वास, सेन गाथा सुनि सुन्दर॥

कथा गोपाल जी की।

गोपाल जी भक्त कृष्ण उपासक जयपुर के राज्य में बड़े साधु सेवी थे। उनकी ख्याति दूर २ तक फैल गई। उनके कुटुम्ब में कोई विरक्त होकर घर से निकल गया। जब उसने गोपालजी की ख्याति सुनी तो वह उनकी परीक्षा लेने आया। गोपालजी ने आदर सत्कार सहित उसकी सेवा की। जब घर में भोजन कराने को ले गये तो विरक्त कहने लगे कि मैं स्त्री को नहीं देखता। गोपालजी ने कहा कि सब अलग हो जायंगी। यह कह कर सब स्त्रियों को अलग कर दिया। जब साधु भोजन कर रहे थे तो क्या देखते हैं कि भक्त की स्त्री झरोखे में से देख रही है। ऐसा देख कर विरक्त ने गोपालजी के मुख पर एक तमांचा मारा। गोपालजी को किंचित् भी क्रोध न आया, उलटे प्रसन्न होकर दूसरा गाल विरक्त की तरफ करके बोले कि इसको भी पवित्र कर दीजिये। विरक्त प्रसन्न होकर कहने लगा कि ऐसे ही पुरुष से वंश का उद्धार होता है।

कुण्डली

पावन कीन्हा वंश निज, धन्य २ गोपाल।
खाय तमांचा दूसरा संमुख कीन्हा गाल॥
संमुख कीन्हा गाल रोष नहिं मनमें लाये।
जीत काम क्रोधादि, शान्ति का पाठ पढाये॥
भोला! तज मद मान, ध्यान धरि सुखद सिखावन।
करि संतन का संग, चरित जिनके अति पावन॥

कथा ग्वाल जी की।

ग्वाल जी साधु सेवी परम भक्त थे। अपने उद्यम से जो कुछ कमाते साधु सेवा में खर्च कर देते थे। एक दिन भैंस चराने जंगल में गये थे। वहां साधु सेवा में लग गये। बिना ग्वाल की देख कर चोर भैंस को ले गये। ग्वाल जी ने घर आकर अपनी माता से कह दिया कि एक ब्राह्मण भैंस को ले गया है कह गया है कि घी के दाम समेत कुछ दिन पीछे भैंस लौटा जाऊंगा। मा समझ गई कि कुछ दाल में काला है परन्तु पुत्र स्नेह से कुछ न बोली। चोरों ने दीपदान के दिन भैंस के गले में चांदी की हंसली पहिनाई। भगवन् तो ब्राह्मणों के भी ब्राह्मण हैं ही। रस्सी तुड़वा कर हंसली समेत भैंस को ग्वालजी के घर पहुंचा गये! वाह भक्तवत्सलता।

कुण्डली

बन में भैंस चरावने, गये एक दिन ग्वाल।
संत सेव में भैंस का, बिसरा उन्हें खयाल॥

बिसरा उन्हैं खयाल, चोर आ भैंस चुराई।
दीपदान के रोज, ताहि हंसुली पहिनाई॥
रस्सा तुड़वा श्याम, भैंस ले आये क्षण में।
भोला! भज घनश्याम, आम बस अथवा बन में॥

कथा लाखा भक्त की।

लाखा भक्त मारवाड़ के रहने वाले थे। उनका जन्म हनुमान वंश में हुआ था। यह सत्या-सत्य का निर्णय करने में हंस के समान थे। राममंत्र के उपासक साधु सेवा में विख्यात हुये। एक बार दुष्काल पड़ा। साधुओं का आना जाना बहुत हुआ, अन्न पास नहीं रहा तो दूसरे स्थान पर चले जाने का विचार करने लगे। भगवत् ने स्वप्न में आकर वहीं रहने की आज्ञा दी और कहा कि सवेरे एक गाड़ी गेहूं की और एक भैंस आवेगी, गेहूं तो एक कोठी में भर देना, जितनी आवश्यकता हो, निकाल लिया करना, घटेंगे नहीं। भैंस के दूध में से घी निकाल लिया करना। जब सवेरा हुआ तो एक आदमी गेहूं और भैंस ले पहुंचा गया। लाखा भक्त यथा पूर्व साधु सेवा करने लगे। वृत्तांत यह हुआ कि एक जमींदार शेखी मारने लगा। यह सुन कर किसी ने कहा कि ऐसा ही बड़ा दानी है तो गेहूं और भैंस लाखा भक्त के यहां पहुंचा दे। यह सुन कर जमींदार को ताव आ गया और वह ही आकर गेहूं और भैंस लाखा के यहां पहुंचा गया। एकबार लाखा भक्त एक सुमरणी भेंट लेकर साष्टांग दंडवत् करते हुए जगन्नाथ जी गये जब मन्दिर थोड़ी दूर रह गया तो जगन्नाथ राय ने पालकी भेज कर दर्शन दिये और सुमिरणी अंगीकार की। कुछ दिन री में रहे। एक लड़की कुंवारी थी। साधु सेवा में रुपया खर्च हो जाता था, बिना रुपया विवाह कैसे होता? जगन्नाथ जी ने आज्ञा दी कि हमारे भंडार से रुपया लेकर विवाह कर दो। लाखा ने अंगीकार नहीं किया। पुरी से चल खड़ा हुआ। जगन्नाथ जी ने एक राजा को स्वप्न दिया। उसने एक हजार रुपये लाखा भक्त की भेंट किए लाखा भक्त ने भगवत् आज्ञा जान कर रुपया अंगीकार कर लिया। घर आकर लड़की का विवाह कर दिया और जो रुपया बचा साधु सेवा में लगा दिया।

छप्पय

हनूमान के वंश, भक्त लाखा थे दानी।
मारवाड़ के देश, साधु सेवी निर्मानी॥
जब आया दुष्काल, भक्त लाखा घबराये।
भगवत् भेजी भैंस, साथ ही अन्न पठाये॥
दिया दर्श जगदीश, ब्याह कन्या करवादा।
भोला! भज विश्वेश, छोड़ छल होय अमाया॥

कथा मनसुख दास की।

मनसुख दास जाति के कायस्थ थे। यह ऐसे भगवद्भक्त हुये कि इनको भगवत् ने साक्षात् दर्शन दिये। साधु सेवा में इनकी बहुत ही प्रीति थी। दैवयोग से कंगाली आ गई, पेट के भी लाले पड़ गये, उपवासों से दिन कटने लगे। ऐसी दशा में किसी दुष्ट के बहकाने से एक साधु ने आकर मिठाई का भोजन मांगा। मनसुख दास ने स्त्री से कहा। स्त्री ने तुरत ही नाक में से नथ उतार कर हाथ पर रख दी। नथ गहने धर के साधु को मिठाई खिलादी। भगवत् अपने भक्त की परम साध्वी

धर्मपत्नी को भला नंगी नाक कब देख सक्ते थे, शीघ्र ही मनसुख दास का रूप धारण करके बनिये के यहां से नथ छुड़ा लाये और मनसुख दास को स्त्री को देने लगे। बड़भागिनी चौका लगा रही थी, बोली 'पहिना दीजिये'! प्रभु ने श्री हस्त से नाक में नथ पहिनादी। मनसुख दास की भक्ति से स्त्री को भक्ति अधिक थी क्योंकि दरिद्रता के कारण केवल एक गहना था सो भी नाक का कि उसी से स्त्री सुहागिन कहलाती है. उसी को उतार कर साधु सेवा की, फिर भगवन् क्यों न दर्शन दें। जब मनसुख दास ने सुना तो मग्न हो गये, स्त्री के भाग्य को धन्य जाना आप भी दर्शन की अभिलाषा से अन्न जल छोड़ कर भजन करने लगे। स्वप्न हुआ कि काशी में दर्शन होंगे। मनसुख दास काशी जाकर भजन करने लगे और वहां प्रभु ने चतुर्भुज रूप से दर्शन दिये। उसी रूप की भक्ति का वर मांगा और अंत में उसी रूप को प्राप्त हुये।

कुण्डली

जाया मनसुख दास की सेवा भक्ति प्रवीण।
साधु सेव हित तुरत ही, नथ गिरवी धरि दीन॥
नथ गिरवी धरि दीन, श्याम सुन्दर सकुचाये।
दाम देय नथ लाय, नाक निज कर पहिनाये॥
बड़भागिनि अपनाय, पुनः मनसुख अपनाया।
भोला! मनसुख धन्य, धन्य मनसुख की जाया॥

कथा राजा बाई की।

राजा बाई रामराजा पुत्र खेमाल की धर्म-पत्नी थी इन्होंने भगवत्, गुरु और भक्तों की ऐसी सेवा और भक्ति की कि संतों ने कृपा करके दोनों लोकों से निर्भय कर दिया। इन्होंने सर्वदा अपने स्वामी की शिक्षा के अनुकूल आचरण किया, नवधा भक्ति को मुख्य मानकर अन्य धर्म छोड़ दिये थे। भक्ति की प्राप्ति का हेतु केवल भक्तों की प्रीति मानती थी। उदार इतनी थीं कि एक बार अपने पति के साथ मथुरा जी गईं। जो कुछ धन पास था, सब साधु ब्राह्मणों को दे दिया, राह के निर्वाह के लिये भी कुछ पास न रक्खा। उसी समय भक्त माल के कर्ता नाभा जी आगये, हाथों में एक सो पांच रुपये के दाम के रहगये थे, विचार किया कि इनको बेच कर घर पहुंच जावेंगे। वे ही कड़े नाभाजी को भेंट दे दिये और राजा से कहने लगी 'आज तक शरीर पर बोझ रहता था, आज ईश्वर कृपा से उतर गया, साधुओं के काम में आगया। राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और किसी प्रकार से राजधानी पहुंच गये। सच है, जिसने कल की चिंता की, वह साधु सेवा क्या करेगा?

कुण्डली

राजाबाई पतिव्रता, भजन पद में प्यार।
प्रेमी नवधा भक्ति को, दानी परम उदार॥
दानी परम उदार, तीर्थ मथुराजी कीन्हा।
था जो कुछ धन पास, दान सब ही करि दीन्हा॥
नाभाजी की भेंट कड़े दीन्हे सुख पाई।
भोला कूं दी सीख, धन्य तू राजा बाई॥

कथा गोपाली की।

गोपाली गिरिधर ग्वाल की माता थी। गिरिधर ग्वाल की कथा आगे सुनावेंगे। भगवद्भक्तों के पालने में यह माई सचमुच यशोदा माई का

अवतार थी। मन मोहन महाराज से ऐसी प्रीति थी कि व्रजचन्द्र महाराज के माधुर्य रस और प्रेम भक्ति के रंग में रंगी हुई दिन रात श्रीगोविन्द श्री-गोविन्द यह ही ध्वनि लगी रहती थी। सन्तों के चरणों में दृढ़ प्रीति थी।

कुण्डली

माता गिरिधर ग्वाल की गोपाली विख्यात।
भगवद्भक्तन पालने, हुई यशोदा मात॥
हुई यशोदा मात, प्रीति मन मोहन रखती।
रंगी प्रेम के रंग, भक्ति रस क्षण२ चखती॥
श्रीगोविन्द गोविन्द, रटत निश दिन या जाता।
भोला भी है बाल, पाल गोपाली माता॥

महात्मा सच्चिदानंद का उपदेश।

पूर्व प्रकाशित से आगे।

महात्मा-भगवतगीता के प्रमाण द्वारा जो दैवी माया से छुटकारे का उपाय शरणागति कहा गया तुमने भली प्रकार समझ लिया या उसमें कुछ संदेह है यदि समझ में आगया तो उसी के अनुसार आचरण करो, माया से फिर कोई भय तुम्हें नहीं रहेगा और यदि कोई संशय चित्त में हो तो प्रश्न करके समाधान करलो संकोच न करो।

शिष्य- श्रीमहाराज! भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में जो अपनी माया को दैवी और दुरत्यय बता कर उससे तरण का उपाय शरणागति बताया यह तो मेरी तुच्छ बुद्धि में आगया कि माया से पार होने का उपाय तो अवश्य है। शरणागति जिसका नाम है और कठिन भी है तथापि वो शरणागति है क्या वस्तु-और किस रीति से जीव ईश्वर की शरण में आता और अभय पद पाता है। इसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये, तब यह मंद बुद्धि कृतार्थ होय।

महात्मा-पुत्र! वास्तव में यह विषय अति गहन है इसी शरणागति मंत्र से प्रभाव से श्रीरामानुज स्वामी को आचार्य पद प्राप्त हुआ था बोह इस प्रकार है।

श्रीरामानुज स्वामी की आचार्य पद प्राप्ति।

श्री जगद्गुरु रामानुज स्वामी जब अपने गुरु से भगवद्गीता का अध्ययन कर रहे थे तो शरणागति प्रकरण के आते ही गुरुजी ने पाठ बंद कर दिया-और कारण यह बताया कि अभी तुम अधिकारी नहीं हो फिर कुछ समय बिता कर रामानुज स्वामी ने गुरु जी से प्रार्थना की तो फिर भी गुरु जी ने टाल बताई अन्त में अत्यन्त विनय और आग्रह के पश्चात् गुरु जी ने स्वामी जी से यह दृढ प्रतिज्ञा करा के उनको मर्म बताया कि गुरु जी की आज्ञा के बिना किसी को यह मर्मार्थ न बतलाया जायगा यदि बतावें तो एक कल्प पर्यन्त रौरव नरक में पड़ कर कष्ट सहें।

इसके अनन्तर जब गुरु महाराज ने स्वामी

रामानुज जी को शरणागति का मर्म भली प्रकार समझा दिया तो स्वामी जी उसी समय दौड़े गये-और नगर के सब से ऊंचे मकान की छत पर चढ़ कर पुकारे कि आज गुरु महाराज ने शरणागति मर्म मुझे समझा दिया है जिस किसी को इच्छा हो आजाओ मैं बताने को तैयार हूं-

ऐसा सुनते ही नगर के सारे विद्यार्थी आकर खड़े होगये और गुरु जी के समक्ष इस अर्थ के जिज्ञासु तथा और भी सादर और बहुत से कौतुक दृष्टि से देखने वाले उसी स्थान पर आपहुंचे पूरी भीड़ भाड़ में स्वामी जी ने वोह सब रहस्य उच्च स्वर से कह डाला-जरा भी गुप्त न रक्खा।

उसी समय किसी ने यह सूचना गुरु जी महाराज को भी देदी-उन्हों ने अत्यन्त क्रोध में भर कर रामानुज स्वामी को बुला कर बहुत फटकारा और गालि प्रदान करके कहने लगे कि नीच तूने हमारे समक्ष जो प्रतिज्ञा करली थी उसका भंग कर डाला तुझे शाप देकर अभी भस्म कर दूंगा ऐसा सुन कर स्वामी जी बोले कि महाराज यह शब्द न कहिये कि प्रतिज्ञा भंग करदी इस दास ने ऐसा कदापि नहीं किया है-तब तो गुरु जी और अधिक भड़क कर कहने लगे अरे दुष्ट धृष्ट प्रतिज्ञा भंग करके मिथ्या भाषण करता है इस पर स्वामी ने फिर हाथ जोड़ कर विनय करी कि भगवन्! दास ने जो प्रतिज्ञा करी थी वो ये ही थी कि यदि आप की आज्ञा बिना यह अर्थ किसी पर प्रकट करूं तो एक कल्प भर रौरव नरक में पड़ूं सो यह अधम शरीर तैयार है अभी इसे नरक में एक क्या सौ कल्प भर के लिये रौरव नरक में डाल दीजिये खुशी से भोगने को तैयार है परन्तु इस एक शरीर के कष्ट पाने से और सैकड़ों सहस्रों मनुष्यों का उद्धार होगया और होता रहेगा-इस बड़े भारी लाभ के आगे इस एक शरीर की कष्ट प्राप्ति कुछ भी नहीं है प्रत्युत सुख दायक ही है बस इन शब्दों ने गुरु जी पर जादू का सा असर किया न जाने क्रोध उनका कहां गया-झट ही दौड़ कर अपराधी शिष्य को छाती से लगा लिया कंठ गद् गद् होगये और आज्ञा की कि पुत्र तू धन्य है तेरी ऐसी परोपकार परायणता अति प्रशंसनीय है जो लोक कल्याणार्थ अपने को इतना बड़ा कष्ट देने को तैयार होगया हमने तेरा अपराध क्षमा किया आज से तू आचार्य कहाने योग्य होगया।

स्वामी जी गुरु चरणों में गिर के विनती करने लगे-और इस कौतुक के द्रष्टा उपस्थित गण ने उसी समय से स्वामी रामानुज जी को आचार्य मान लिया।

(शरणागति)

विषीदता नाथ विषानलोपमे विषाद भूमौ भवसागरे विभो
परंप्रती कारम पश्यताऽधुना मयाऽयमात्मा भवते निवेदितः॥

हे सर्वत्र व्यापक भगवन् जहरीली अग्नि के समान दुख रूपी भूमि वाले भवसागर में घोर कष्ट पाता हुआ यह जीवात्मा अति संकट में पड़ा हुआ कोई उपाय इस से पार होने का न देख कर आपकी भेट अर्थात् आप की शरण में आया है।

इसी का नाम आत्म निवेदन है जो नवधा भक्ति में नवें नम्बर पर कही गई है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वयो वै वेदांश्च प्रहिणो
तितस्मै-तं हदेवमात्म बुद्धि प्रसादं मुमुक्षु
वै शरणमहं प्रपद्ये-

जो पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सृष्टी से पहले ब्रह्मा को उत्पन्न कर उसके अर्थ वेद विद्या प्रदान करता है-

ऐसे आत्म बुद्धि के प्रसन्न कर्ता देव की शरण में मोक्ष की इच्छा रखने वाला जीव आवाहूं-यह श्रुति शरणागति में मुख्य प्रमाण है फिर कहते हैं।

कः पंडितस्त्वदपरं शरणं समीयात् भक्त प्रियादृत
गिरः सुहृदः कृतज्ञात्-सर्वान् ददाति सुहृदो भज
तोऽभिकामानात्माधनमभ्युपचयाऽपचयौ न यस्य ॥

वह कौन चतुर और पंडित है जो तेरे सिवाय किसी और की शरण में जाय-तू कैसा है भक्तों का प्यारा और भक्त प्यारे हैं जिसको-सत्यवादी-हितु, कृतज्ञ-और कैसा कि अपने भजन करने वालों को उनकी इच्छा के अनुसार फल देने वाला-यहां तक कि अपने हानि लाभ पर भी दृष्टि न देकर भक्तों की कामना सिद्ध कर देताहै।

पहले प्रमाणों, से यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष कामी मनुष्य अथवा किसी दुख और आपत्ति से भी व्याकुल जीवात्मा अन्य कोई उपाय मनोरथ सिद्धि का न पाकर परमात्मा की शरण में जाता है।

फिर यह बतलाया कि शरण्य अर्थात् जिस की शरण में जावै वह कैसा होना चाहिये-और प्रभु में कौन कौन से सद्गुण हैं जो और किसी में नहीं पाये जाते।

(गज़ल)

सब को तज प्राणी जो भगवत् की शरन जाता है।
फिर वो चौरासी के फंदे में नहीं आता है॥
घोर जंगल में रिपु दलमें अगिन अरु जल में।
जन की रक्षा को हरी झट ही खड़ा पाता है॥
काम क्रोध और महा मोह असुर लोभादिक।
इन के काबू से सहज भक्त निकल जाता है॥
सारे धर्मों में बड़ा है हरि शरणागति धर्म।
गीता जी का यही सिद्धान्त नजर आता है॥
जब तलक पूरा भरोसा नहो हरि चरणों में।
अपनी करतूत के बल फिरता है दुख पाता है॥
होके मथुरेश शरण पाय लिया जो आनन्द।
ब्रह्म आनन्द उसे देख के शर्माता है॥

सुखरामदास-श्रीमहाराज! आपने जो शरणागति धर्म वर्णन किया उससे इस अधम शरीर के चित्त को बहुत बड़ा लाभ हुआ परन्तु जो प्रमाण वचन ऊपर कहे गये उन में भगवान् श्रीरामचन्द्र महाराज अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण भगवान् के श्री मुख से उच्चारित कोई प्रमाण वचन नहीं आया क्या और भी कोई भगवत् वचन इस में प्रमाण हैं।

महात्मा प्रिय शिष्य! अभी तो हमने बहुत संक्षिप्त कहा है विस्तार से अब कहते हैं सो सुनो।

वाल्मीक रामायण में विभीषण शरणागति प्रकर्ण सुन ने और विचारने के योग्य है जब रावण ने भरी सभा में उचित वक्ताविभीषणका अनादर करके उसे निकाल दिया तो वो भगवान् श्रीरघुवर राज कुमार की शरन में लंकासे आकाश मार्ग होकर भगवान् के निकट मुख से दीन शब्द उच्चारण करता हुआ आरहा था-उसे देख कर राम दल में खल बली पड़ गई जामवन्त सुग्रीव आदि मन्त्री सेवा में उपस्थित थे उन से राय लीगई तो नीतिशास्त्र के ज्ञात-मन्त्रियों ने राय दी कि शत्रु के भाई का कभी विश्वासा नहीं करना चाहिये उस पर भी राक्षस बड़े मायावी होते हैं उनका भरोसा तो कदापि करना उचित नहीं है परन्तु उस समय भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रघु कुल तिलक राम सब की सम्मति सुन कर आज्ञा करने लगे कि आप लोगों की राय यद्यपि राज नीति के अनुकूल मान्य है-तथापि मेरा एक दृढ प्रण्त व्रत है सो भी सुनलो।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीतियाचिते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

जो कोई एक बारभी ऐसा कह कर कि मैं तेरा हूं मेरी शरण में आजाय उसे मैं सब प्राणियों से अभय कर देता हूं। अर्थात् मेरी शरन में आये हुवे को यमराजतक किसी प्राण धारी से भय नहीं रहता।

ऐसा फरमा कर आपने विभीषण को जो दंडवत पृथ्वी पर पड़ गया था उठा कर छाती से लगा लिया और लंकेश पद बख्श दिया !

जय हो शरणागत वत्सल भगवान् की जय हो इसी प्रकार भगवत् गीता में लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण चंद्र ने १८ अध्याय में गुप्त और गुप्त तर उपदेश अर्जुन को देकर अन्तिम उपदेश यह दिया कि।

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच ॥

अर्थात् सब धर्मों को छोड़ कर एक मेरी शरण में आजा मैं सब पापों से तुझे छुड़ा दूंगा सोच मत कर इससे अन्तिम सिद्धान्त शरणागति ही सिद्ध होता है।

सुखराम:-महाराज इस गीता के सिद्धान्त वाक्य में तो बड़ी भारी शंका है-कि भगवान् श्री कृष्ण चंद्र का अवतार ही धर्म की रक्षा के लिये हुआ है और गीता में बहुधा स्थलों में धर्माचरण की स्वयं भगवत ने आवश्यकता प्रकट करके आज्ञाकी है फिर अन्त में भगवान् ही ऐसी आज्ञा क्यों कर रहे हैं कि सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरन में आ इस प्रकरण में स्वामी रामानुज आचार्य ने अपने गुरु से जो मर्मार्थ श्रवण किया वोभी कृपा करके वर्णन कीजिये और इस दास कि शंका का समाधान कीजिये।

महात्मा:-तुम चतुरहो और तुम्हारी आशंका उचित ही है इस श्लोक के अर्थ में बड़ी भारी भ्रान्ति पंडितों कोहो जाती है टीकाकार भाष्यकारों के भी इस में नाना पृकार के कथन हैं-मैं तुमको इस का मर्म उस अर्थ के निष्कर्ष कोभी लेकर श्रवण कराता हूं जो श्री रामानुज स्वामी का स्वीकृत है।

देखो इस श्लोक में एक चमत्कार है जो थोड़े हि ध्यान देने से समझ में आने योग्य है और शंका का समाधान भी उससे भली भांत होजायगा।

इस श्लोक में साधारण दृष्टि से तो यह ही पाया जाता है कि धर्म रक्षक भगवान् गीता के पृत्येक अध्याय में धर्म आचरण की आज्ञा करते आरहे हैं और इसी अठारवीं अध्याय में भी अपना मत यह जता रहे हैं कि:-

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्य मेवतत्।

अर्थात् यज्ञ आदि कर्म त्यागना नहीं चाहिये करना ही चाहिये-फिर अपने मत का खंडन करके आप ही धर्मों के छोड़ देने की आज्ञा कैसे कर रहे हैं यह तो बड़ा भारी दोष है कि आप ही एक बात कहें और आप ही उसका खंडन कर देवें "वदतोव्याघात" इसी का नाम है:-

परन्तु गंभीर दृष्टि से देखा जाय तो कुछ भी संशय प्राप्त नहीं होता-प्रथम तो १८, अध्याय के प्रारम्भ में ही अर्जुन के पृश्न के उत्तर में भगवान् ने कर्म संन्यास और कर्म त्याग का लक्षण स्पष्ट कर दिया है अर्थात्:-

काम्यानां कर्मणाँ न्यासं संन्यासं कवयो विदुः-
सर्व कर्म फल त्यागं प्राहु स्त्यागं विचक्षणाः ॥-

काम्य कर्मों का छोड़ देना संन्यास है और सब

कर्मों के फल का छोड़ना त्याग कहलाता है।

अब देखो छथा सठवें श्लोक में न्यास शब्द दिया है या त्याग यदि ऐसा पाठ होता कि (सर्वधर्मान् हि संन्यस्य मामेकं शरणं व्रज) तब तो स्वच्छग्राही अर्थ होता कि सब धर्मों को छोड़ कर भगवत् शरण होना- परन्तु यहां तो संन्यस्य शब्द है ही नहीं परित्यज्य शब्द है:-

जिसका अर्थ है त्याग करना-तो त्याग शब्द का अर्थ जो स्वयं भगवान् दूसरे नम्बर के श्लोक में कर आये हैं वोही लेना पड़ैगा-और वोह क्या है कि फल को छोड़ कर कर्म करना-तो स्पष्ट अर्थ येही प्राप्त हुआ कि धर्म आचरण करते हुवे फल की इच्छा न रखना-अर्थात् यज्ञादिक कर्म अपने २ आश्रम के अनुसार करता हुआ कोई संसारी कामना न रखना येही धर्मों का त्याग है:-

धर्म आचरण करता हुआ भक्त किसी वस्तु की इच्छा न रख कर भगवान् की शरण में आवै तो भगवान् उसके सब पापों का नाश करके परमानंद पद मोक्ष प्रदान करते हैं-येही प्रयोजन इस स्थल में भगवान् का था अन्यथा यदि स्वरूप से सब कर्मों का छुडा ना अभीष्ठ होता तो अर्जुन को क्षत्रिय धर्म युद्ध का निषेध सिद्ध होजाता-सोकदापि संभव नहीं होसकता।

भक्ति भेंट।

नगर से बाहर थोड़ी दूर पर मीठे एवं शीतल जल से भरी एक छोटी सी नदी थी, जिसकी इठलाती हुई लहर बिना प्रयास ही दर्शकों का हृदय हरलिया करती थी। उस नदी के किनारे संग मरमर का एक विशाल भव्य मन्दिर था जिसमें सकल सुखों के दाता संसार को पालन हारे भगवान विष्णु की हृदयलता को लहराने वाली चतुर्भुज मूर्ति विराजमान थी। सुबह शाम मन्दिर में दर्शक गणों की पर्याप्त भीड़ रहा करती थी।

एक दिन की बात है, प्रातःकाल का खिला हुआ सुहावना मुखड़ा प्राणियों को प्रसन्नता से भर रहा था। सूर्य देव को अभी निद्रा से जागे थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था जैसा कि उनके सिंदूर-वर्ण मुख से भली भांति प्रतीत हो रहा था नदी पर स्नान करने वालों की भीड़ लगी हुई थी। वृद्ध वृद्धायें, बालक बालिकायें, युवक युवतियें, सब ही अपने २ ढंग से नदी के स्वादु, शीतल एवं सुखद जल का आनंद ले रहे थे। मैं भी नदी माता के वक्षःस्थल को क्रीड़ास्थल बनाता हुआ हर्षोन्मत्त हो रहा था।

बहुतेरे प्राणीगण स्नान कर २ के भगवान् के दर्शनों के लिये मन्दिर में जा रहे थे। मेरे मन मन्दिर में भी इच्छा शिशु भगवत् दर्शन के लिये मचल रहा था, हठ कर रहा था। मैं, उसके मचलने से पराजित होकर उसकी हठ से हार मान कर मन्दिर के अंदर प्रवेश करने के लिये बाधित होगया। बालक के मचलने से कौन विचलित नहीं होता, शिशु हर किसे नहीं हराते।

मैं मन्दिर के भीतर प्रवेश करके एक कोने में जाकर खड़ा हो गया। मंदिर में दर्शकगणों का तांता बंधा हुआ था, दस आते थे, दस जाते थे। पुजारी जी को प्रसाद, चरणामृत देने से पल भर की फुर्सत न थी। वे दर्शन करने वालों को इस तरह निहार रहेथे जिस प्रकार दुकानदार ग्राहकों को वकील मवक्कलों को। निहारना ही नहीं बल्कि उनका

वर्ताव भी दर्शकों के साथ वैसा ही था। जितनी अधिक कोई भेंट चढ़ाता था, उतना ही अधिक वे उसके साथ सहृदयता, नम्रता का व्योहार करते थे। दर्शक की भेंट के साथ पुजारी जी के मुख के विकसने तथा सुकड़ने का बड़ा भारी संबन्ध था। उन की जिह्वा भी उस समय अकथनीय परिश्रम कर रही थी। "दर्शन करो भेंट चढ़ाओ लोक परलोक का सुख पाओ" की ध्वनि बराबर मन्दिर के वायु मंडल में गूंज रही थी।

दर्शक गण दो भिन्न २ प्रेरिणाओं से प्रेरित होकर, भेंट चढा रहे थे कुछ श्रद्धा भक्ति से कुछ लोक लज्जा से। भेंट की मात्रा का भी कुछ ठीक नहीं था। कोई पैसा चढ़ा रहा था तो कोई रुपया, भेंट कर रहा था तो कोई अठन्नी कोई दुवन्नी निछावर कर रहा था तो कोई चवन्नी। एक रावसाहब अपने रुतवे का ख्याल करके अशर्फी ही चढा गये। पुजारी जी का मुख भेंट की मात्रा के साथ २ रंग पलटता था। जितनी भेंट की मात्रा अधिक होती थी उतना ही उनका मुख खिल जाता था तथा जितनी भेंट न्यून मात्रा में चढ़ाई जाती थी उतने ही नाक भौं सुकड़ जाते थे। पैसे वालों को तो पुजारी जी खातिर में भी नहीं लाते थे पैसे से काम की तो बात करना ही व्यर्थ है क्योंकि पैसे से कम तो कोई पुजारी जी की भेंट (पुजारी जी की भेंट कहना अधिक उचित है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता था कि मानो भगवान की ओर से उन्हें भेंट लेने का ठेका मिला हुआ है) चढ़ाता ही न था।

मैं चुपचाप अपने स्थान पर खड़ा हुआ यह सब देख रहा था। मेरे हृदय-सागर में भगवन् दर्शन की इच्छा तरंगें अति वेग से उठ रही थीं परन्तु भेंट का ख्याल उनके साथ नाव का सा काम कर रहा था। जब २ मैं इच्छा रूपी थपकी से उत्साहित होकर दर्शनों के लिये आगे बढ़ना चाहता था, तब ही "नाथ को क्या भेंट चढाऊं" यह पांच कड़ी की जंजीर मेरे चरणों को इस बुरी तरह जकड़ देती थी कि मेरा अपनी जगह से हिलना ही नहीं-असम्भव सा हो जाता था मैं ... ... निर्धन था...... दरिद्र था ... ... गरीब था ... ... मेरे पास पैसा न था।

मैं उस समय ४, साढ़ेचार गजि गाढ़े कि धोति तथा एक मोटा मोटा खद्दर का कुरता पहिने हुए था मेरे शरीर पर इन दोनों वस्त्रों के सिवाय और कोई कपड़ा न था। मैं कुरते की जेब को कई बार पूर्ण रीति से टटोल चुका था परन्तु निराशा कंकर के सिवाय कुछ हाथ न आया था।

मेरे हृदय-क्षेत्र में बारम्बार यही विचार उथल पुथल मचा रहा था कि "भगवान् को क्या भेंट चढाऊं"। मुझे अपने ऐश्वर्य हीनता पर अत्यन्त क्षोभ हो रहा था। मैं—निराशा के अगाध सागर में डूबा जा रहा था। मुझे कोई सहारा, कोई किनारा दृष्टि न होता था।

सहसा मम हृदय-अंधकार में धुंधला आशा प्रदीप टिमटिमा उठा। निराशा सागर में डूबते को आशा-तिनके का सहारा मिला। मैंने धोति की आंटि टटोली और परिणाम में हथेलि पै एक पाई को बैठे पाया। मैं पाई पाकर प्रसन्नता से झूम गया परन्तु साथ ही संकोच से भर गया। मेरे हृदय-क्षेत्र में अभिलाषा और संकोच का भयंकर युद्ध मच गया। अभिलाषा उछल २ कर कह रही थीः-

बिना किसी अंदेशे के दर्शनों को चला चल। भगवान् रुपये पैसे के भूखे थोड़े ही हैं, वे तो भक्ति के भूखे हैं भक्ति के। उन्हें जो सकल संसार को पालन करते हैं धन, धान्य की क्या पर्वा पड़ी है, वे तो श्रद्धा चाहते हैं श्रद्धा। अतः देर न कर, दर्शनों से जीवन सफल कर।

दूसरी ओर संकोच गम्भीरता पूर्वक कह रहा था बिना किसी उत्तम भेंट के, भगवान् के समीप चलना अनुचित नितान्तअनुचित है। छोटे मोटे राव राजाओं के साथ भी उचित भेट लेकर चला जाता है फिर भगवान् तो राजाओं के भी राजा हैं तूही सोच इनके पास पाई लेकर चलना कहां तक उचित्त, कहां तक ठीक है।"

इसी तरह अभिलाषा और संकोच अपनी २ गाथा गा रहे थे। मेरी विचित्र दशा थी, कभी अभिलाषा की ओर खिंच जाता था कभी संकोच की ओर इसी तरह बहुत समय बीत गया। अंत में सहसा अभिलाषा ने संकोच को दबा लिया। मैंने भगवान् के दर्शन करने ही उचित समझे।

मन्दिर के द्वार पर फूल बेचने वाली मालिन बैठी हुई थी। मैंने निश्चय किया कि इस पाई के कोमल सुगन्धित गुलाब पुष्प मोल लेकर भगवत् के कमलोपम चरणों में चढाऊं, इस निश्चय को कियात्मक रूप देने के लिये मैं फूलों वाली के पास गया तथा पाई इसकी ओर बढाते हुआ उससे सविनय सुन्दर २ पुष्प देने को कहा। पाई को देख कर मालिन तमक गई। उसने नखरे भरे स्वर में कहा:-

अपनी पाई को बाबू अपने पास ही रक्खो। पाइयों के फूल नहीं बिका करते। गुलाब के बढिया२ कोमल फूल लेने आये हैं और दिखा रहे हैं पाई का मनहूस मुंह।

फूलों वाली के शब्दों ने तीर की तरह घुस कर कलेजा छलनी २ कर दिया। मेरे हृदय के टुकड़े २ हो गये। अभिलाषा पर गहरी चोट पड़ी। संकोच को पुनः सिर उठाने का अवसर मिल गया तथा उसने फिर मुझे वश में कर लिया। मैं उसी विवसता की दशा में दुख, लज्जा एवं अपमान को अपने साथ में लिये दुबारा अपने पहिले स्थान पर लौट आया।

पहर भर से अधिक दिन चढ आया था। कोई ११ बजे का समय होगा। जिस मन्दिर में भीड़ के मारे दर्शकगणों का कंधे से कंधा छिलता था, वहां ही अब इक्के दुक्के दर्शक के भी कठिनता से दर्शन होते ते।

पुजारी जी को अब अधिक प्राप्ति की आशा न थी। उनके भोजन का समय भी हो आया था। रसोईघर से स्वादिष्ट भोजनों की सुगन्धियें आ २ कर उनको भोजन के लिये बेचैन कर रही थीं। इन सब कारणों से विवश हो कर उन्होंने मन्दिर को बन्द करना ही उचित्त समझा अतः भेंट का थाल संभालने में लगे।

पूरी तौर से संकोच के वश में होने के कारण मैंने अब तक भगवान् के दर्शन नहीं किये थे। अभिलाषा-दीपक के सूंघे हुए तेल की पुनः पूर्त्ति अभी तक नहीं हुई थी।

पुजारी जी के मन्दिर बन्द करने के लक्षण देख यह टिमटिमाता हुआ दीपक एक बार जोर से बल उठा। संकोच उसकी ज्वाला से भस्म गया। मेरे पांवों में पैरये लग गये। क्षण भर में मैं भगवान

के चरणों के समीप जाकर खड़ा हो गया तथा दर्शनामृत पान करने लगा।

शीश पे मुकुट धारण किये हुए, कभी न मुरझाने वाले वैजयन्ती पुष्पों की माला पहिने हुए, हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए कोमल पावों को नूपुरों से अलंकृत किये हुए, वक्षस्थलपर कौस्तुभ मणि को स्थान दिये हुए, पीताम्बर ओढ़े हुए साक्षात संसार को सुख दायक, सकल विश्व को पालन पोषण हारे, दुष्टजनारि, भक्तों को अक्षय सुखों के दाता, भगवान की प्यारी २ सांवली सलोनी सूरत को निरख के, मन मोहिनी मूरत के दर्शन करके मैं आनंद-विव्हल हो गया। मेरा रोम २ पुलकित हो गया। मुझे तन बदन की सुधि न रही। मैं ... ... अचेत ... ... हो गया ... ...

पता नहीं मैं ऐसी परिस्थिति में कब तक रहा।

पुजारी जी को भोजन के लिये विलम्ब हो रहा था। वे कुछ प्राप्ति की आशा से ठैर गये थे। वे कई बार अपनी नित्य की आवाज "दर्शन करो" भेंट चढ़ाओ! लोक परलोक का सुख पाओ, लगा चुके थे जो वे सुधी की दशा में होने के कारण मुझे सुनाई न पड़ी थी। अब भोजन में अधिक विलम्ब पुजारी जी न सह सके। उन्हों ने एक कड़कती हुई आवाज से मेरी आनन्द-निद्रा यूं भंग की।

अब दर्शन ही किये जाओगे, बाबू कुछ भगवान की भेंट भी चढ़ानी है या नहीं!

आनन्द निद्रा के भंग होते ही भेंट चढ़ाने का प्रश्न सम्मुख उपस्थित हुआ। मुझे जेब से पाई निकाल कर चढाने को उद्यत देख कर संकोच ने फिर रोका।

देखो! एक बार अपमानित हो चुके, अब समझ से काम लो।

अभिलाषा लता जो अब भली भांति लहरा रही थी, मुस्कराती हुई इस प्रकार बोली।

वह बात कुछ और थी, यह बात कुछ और है। जो कुछ तुम्हारे पास है, वही चडाओ। भगवान श्रद्धा के भूखे हैं। रुपये पैसे के नहीं।

उन्होंने तो अर्जुन को गीता का उपदेश देते समय नोवीं अध्याय में स्पष्ट कह दिया है कि:-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मां भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृत मश्नामि प्रियतात्मनः॥

पत्र, पुष्प, फल तथा जलादि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध, बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र पुष्पादिक मैं सगुण रूप से प्रकट हो कर प्रीति सहित खाता हूं। भगवान तो भाव के भूखे हैं उन्होंने तो भाव से अर्पण किये हुये विदुर जी के शाक पात के सामने दुर्योधन के भाव रहित स्वादिष्ट भोजनों की भी कुछ परवाह न की।

किसी कवि ने क्या ही उत्तम कहा है।

भाव के भूखे हैं भगवान्॥
भाव न हो सच्चा जो उर में तो सब व्यर्थ विधान॥१॥
भाव शून्य आदर सब झूठा झूठा है सम्मान॥ २॥
भाव नहीं तो मनुज देह यह जीवन मृतक समान॥ ३॥
सत्य हृदय का शुद्ध भाव ही जग में परम प्रधान॥ ४॥
भाव होय तो ईश्वर दीखे भाव बिना पाषाण॥ ५॥

भाव की बात मुझे ठीक जची। मैं पाई भेंट के थाल में डालने लगा। सहसा पुजारी जी ने मेरा हाथ जोर से झटक दिया। पाई मेरे हाथ से छूट कर पता नहीं कहां जा पड़ा। पुजारी जी ने क्रोध

में भर कर दहकते हुए शब्द-अंगारे सुन्ना पर फेंके।

हे! दुष्ट! पापी तेरा इतना साहस इतनी हिम्मत कि पाई चढ़ा कर भगवान् का अपमान ·····

इतना कहते २ पुजारी जी भगवान की ओर देख कर कुछ सहम गये। भगवान के नेत्रों से रोष के शोले निकल रहे थे। पुजारी जी मुद्दतों से पूजा करते आरहे थे किन्तु उन्हों ने मूर्ति के नेत्रों से यह बात पहिले कभी अनुभव न की थी। अब तक वे मूर्ति को जड़ समझ कर पूजा करते आये थे। भगवान के नेत्रों की ज्वाला उन से सहन न हो सकी। उन्हों ने भाग जाना चाहा परन्तु भाग भी न सके: वहीं बैठे के बैठे रह गये।

मैं ··· ··· खड़ा हुआ ··· ··· लज्जा, दुख क्षोभ से ··· ··· ··· ··· गला जा रहा था। मुझे ··· ··· ऐसा मालुम होता था मानो मैं ने कोई ··· ··· भयंकर अपराध ··· ··· किया है। ··· ··· ··· ···

मेरे ··· ··· हाथ ··· ··· जुड़ गये, नयन ··· उपर को ··· उठ ··· ··· गये तथा ··· ··· यह देख कर कि ··· ··· भगवान के गुलाबी होंठो की पंखटिया ··· ··· खिल गयी है। मेरे आश्चर्य की ··· ··· सीमा न रही।

गुलाबी अधरों से यूं पुष्प वर्षा होनी आरम्भ हुई :-

"वत्स! तूं क्यों दुखी तथा लज्जित होता है। तेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तेरे सों अति प्रसन्न हूं। मैं धन धान्य का भूखा नहीं हूं। मुझे तो श्रद्धा भक्ति ही तृप्त कर देती है।

क्या तुझे गीता में कहे हुवे मेरे वाक्य स्मरण नहीं हैं। मैंने तो स्पष्ट कह दिया कि-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

मेरे में मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुये जो भक्त जन अतिशय श्रेष्ठ से युक्त हुए मुझ सगुण स्वरूप परमेश्वर को भजते हैं वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य है। जो पुरुष मेरे लिये ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, सांसारिक पदार्थों में स्नेह नहीं रखता है, सारे प्राणियों में वैर भाव से रहित है वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है। जिस परम भागवत् ने मन और बुद्धि मेरे को ही अर्पण करदी है वह भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

भगवान के मधुर बचनों का आनन्दामृत पान करके मैं मस्त हो गया ··· ··· वे मुग्ध हो गया ··· कृतज्ञता प्रकट करने से भी चूक गया परन्तु ··· ··· नयन नहीं चूके। वे अश्रु जल भर लाये जिस के कारण विवश हो कर, मुझे नयन नीचे की ओर झुकाने पड़े कृतज्ञता प्रकट होगई।

नेत्रों से दो बूंद अश्रुओं ने निकाल कर कपोलों की राह तै करनी शुरु की। चिबुक पर दोनो ऐक्यता सूत्र में पुर कर, भेट के थाल में पड़ी हुई अशर्फी पर जा पड़ें।

भगवान के होंट फिर हिले।

ओ महांन्ध रुपये के लोभी पुजारी! ओ पूजाअरि! जानता है, यह बृहत अश्रु बुन्द क्या है। यह अश्रुबुन्द वह मोती है जो श्रद्धा भक्ति प्रेम आदि अमूल्य वस्तुओं के सम्मिश्रण से बना है। बता! भक्तों को अपमानित करने वाले पापी पूजा अरि, बता! तेरे इस थाल की कौनसी भेंट से, इस भेंट की-इस अमूल्य भेंट की तुलना की जाय

सकती है।

पुजारी जी अपने कृत्य पर लज्जा एवं पश्चात्ताप से भर गये। उन के मुख से बोल न निकला।

पुजारीजी की भेंट का थाल घरे का धरा रह गया। सुनहरी अशर्फी पे स्थित मोती अशर्फी को त्याग कर अदृश्य हो चुका था।

भगवान के नयन मेरी ओर अमृत वर्षा करने लगे। उनके गुलाबी अधरों से फिर फूल बिखरे।

वत्स! मैं तुम्हारी इस श्रद्धा भेंट से ... ... इस भक्ति-भेंट से अत्यन्त प्रसन्न हूं ... ... मैं ... ... कृतार्थ होकर ... ... भगवान के ... ... कमल सम कोमल ... ... चरणों से ... ... लिपट गया। वह ... ... अपना ... ... स्नेह भरा प्यारा ... ... माखन सा मुलाइम कोमल कर ... ... मेरे सिर पर फेरने लगे। इस समय के आनंद का वर्णन लेखनी के बश का काम नहीं

श्याम-वंदना

श्री वैकुण्ठ प्रसाद वर्मा "आर्यरत्न"
लेहसुना (पटना)

(१)

श्याम! मुझको छोड़ कर क्यों, चल दिये जल्दी बता।
खोजता फिरता रहा फिर भी मिला नहीं कुछ पता॥
गोप-बालों संग क्या भाया नहीं था खेलना।
औ मुसिव्वत मातृ वत्सल नाथ का वह झेलना॥

(२)

को करेगा गोपियों संग नई नई अट केलियां।
कौन गावेगा विपिन में गो चराते लोरियां॥
को चुरा नवनीत मेवा खायगा प्यारे कहो।
अब, कौन वंशी रव-सुधा मुझको पिलावेगा कहो॥

(३)

खिन्न होते देख अब उत्साह को फिर लायगा।
दुखित लखकर भक्तों को अब मदद को पहुंचायगा॥
दुष्ट दलने का नज़ारा कौन अब दिखलायगा।
पाठ गीता का भी मुझको कौन अब सिखलायगा॥

(४)

तेरे विरह में गो तुम्हारी विकल हो फिरती सभी।
औ सताये जा रहे भक्तों भी दुष्टों से सभी॥
हे! नाथ विनती कर रहा मैं दरश आकर दो अभी।
पूर्ववत भारत हमारा नाथ, हो सत्वर अभी॥

शरण

[ले० मदनगोपाल सिंहल मेरठ]

नवत्सल अब मैं तुम्हारी शरण में आया हूं चारों ओर गया संसार में सब पूकार दिल लगाना चाहा परन्तु न लगा। जिन्हे अपना समझता था वह अपने न निकले इस पृथिवी तल के वासी जिन्हे मैं अत्यन्त कोमल समझता था कठोर-अत्यन्त

कठोर-निकले। उनके देह कनक घट में अमृत समझा था परन्तु विष के दर्शन हुवे। सुन्दरता के अन्दर निष्ठुरता मिली, मीठे शब्दों का अर्थ कड़वा निकला, मित्र समझने वालों को शत्रु पाया, प्रेम जताने वालों को निज स्वार्थ से भरे हुवे देखा जिन्हें अब तक अपना अपना कहता रहा उन्हे एक बार भी मुझे अपनाते न पाया प्यारे इसी लिये मैं अब तेरी शरण में आया हूं।

प्यारे! जिनका रंग स्वेत था उनके हृदय में अंधियारी थी द्वेष और स्वार्थ की श्यामलता थी, मुझे नष्ट कर देनेके भाव उनके हृदयाकाश में काले २ बादलों के समान चक्कर लगा रहे थे। घनश्याम! तुम तो काले होन, तुम्हारे हृदय में शायद दया, सहानुभूति और प्रेम की स्वेत झलक दिखाई पड़े यही सोच कर तुम्हारे पास आया हूं। हृदय वल्लभ समय ही उलटा है। जब स्वेत शरीरों के अन्दर काले कलुशित हृदय छिपे हुवे हैं तो तुम्हारे श्याम शरीर में अवश्य प्रेम-मय, पावन हृदय होगा। इसकी मुझे पूर्ण आशा है। इसी लिये तो मैं तेरे निकट आया हूं।

सुना है और पढ़ा है तुम बड़े दयालु हो, जो दीन भाव से तुम्हारी शरण आता है तुम उसे अपना कर लेते हो।

घनश्याम! मैं भी किसी का होकर रहना चाहता हूं। मुझे तुमही अपना बनालो। प्राणाधार? मैं तुम्हारा होना चाहता हूं तुम्हें अपना बनाना तो मेरी शक्ति से बाहर है कारण तुम परमात्मा हो मैं आत्मा हूं, तुम पूर्ण हो मैं अंश हूं, तुम सागर हो मैं तरङ्ग हूं। तरङ्ग सागर की हो सकती है, अंश पूर्ण का हो सकता है परन्तु सागर तरङ्ग का नहीं हो सकता, पूर्ण अंश का नहीं हो सकता इसी प्रकार मैं तुम्हारा हो सकता हूं तुम मेरे नहीं हो सकते। तुम मेरे नहीं बन सकोगे इसका मुझे शोक नहीं यदि तुम मुझे अपना स्वीकार करलो।

प्रियतम! यह हृदय निराश्रय हो रहा है, अपने रहनेके लिये स्थान ढूंढ़ता फिरता है। कोई ठीक स्थान मिलने पर ये निश्चिन्त होकर वहीं रहने लगेगा प्यारे! तुम तो भूले को मार्ग बताने वाले हो, निराश्रयों को आश्रय देने वाले हो। क्या मेरे इस भटकते हृदयको आश्रय नहीं मिलेगा? क्या आपके विशाल चरणों में इस हृदय के रहने योग्य स्थान नहीं है?

शरणागत् वत्सल! मैं संसार का ठुकराया हुवा हूं और दुखी होकर तुम्हारे दर पर आश्रय की भिक्षा मांगने आया हूं। प्रभु! देखना ठुकरा न देना तुम्हारे दर की हद के बाहर काम क्रोधादि खड़े मेरी बाट देख रहे हैं यदि तुमने ठुकरा दिया तो वह सब मिल कर मुझे खा जायेंगे। देखो देखो वह मेरी ओर ही आ रहे हैं दीनानाथ, अब विलम्ब न करो दौड़ो; दौड़ो गज की टेर पर नंगे पांव दौड़ने वाले प्रभु दौड़ो मुझे अपने चरणों की 'शरण' दो।

आत्महित-चिंता

[ले० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, जबलपुर म० प्र०]

आत्मैवह्यात्मनो बन्धुः। (गीता)

इस समय भारत में भारत का उद्धार करने वाले नेताओं की बाढ़ आई हुई है। जिसे देखिए वही भारत के उद्धार में लगा हुआ दीख पड़ता है। कोई चर्खे को सुदर्शन चक्र की उपमा देकर उसके द्वारा

भारत का उद्धार करने में लगा है। कोई खद्दर का व्यापार करके भारत का उद्धार करना चाहता है। कोई अछूतों के घर भोजन करके भारतोद्धारक बनना चाहता है। कोई विधवाओं को सधवा बनाने में ही भारत के उद्धार का स्वप्न देख रहा है। पर जिन सात्विक भोज्यान्न गेहूं, चावल, दूध, घी, आदि को पेट भर खा पीकर भारतवासी हृष्ट, पुष्ट दीर्घ जीवी और सुखी हो सकते हैं और जिनका पैदा करना अभी तक भारतवासियों के ही अधिकार में बना हुआ है, उनका सुधार और उत्कर्ष करने की ओर किसी माई के लाल का ध्यान नहीं जाता।

कुछ भारतवासियों को यह रोग लग गया है कि वे लोकल बोर्ड डिस्ट्रिक्ट बोर्ड म्युनिसिपालिटी, लेजिस्लेटिव कौन्सिल और असैम्बली के मेम्बर बन कर भारत का उद्धार कर सकते हैं। अतः वे लोग अपने बड़े बूढ़ों के धन को पानी की नाईं बहा-कर उक्त संस्थाओं की मेम्बरी को प्राप्त करते हैं। इन संस्थाओं में जाकर वे लोग अपनी तथा अपने देश भाई भारतीय लोगों की हितचिन्ता में तनिक भी मन नहीं लगाते। हां ऊपरी बातों में खूब मन लगाते हैं। सड़कों के बनवाने, नदियों के घाटों आदिका प्रबन्ध करने में ही अपने कर्तव्य कर्म की इति श्री कर देते हैं। उक्त संस्थाओं के मेम्बर लोग वहां जाकर वकील बैरिस्टरों की शुष्क तर्क युक्त बातें सुन सुन कर धूर्तता की बातें करने में बहुत निपुण हो जाते हैं। पर आत्महित की बातों को समझने बूझने को तिल मात्र भी चिंता नहीं करते। क्योंकि आत्महित की बातों को समझ लेवें तो उसमें कुछ धन खर्च करना पड़ता है और साथ ही कुछ परिश्रम भी करना पड़ता है। अतः वे आत्म हित चिंता से दूर ही रहा करते हैं।

आज से पचास वर्षों के पूर्व भारत की धरती जितनी उपज देती थी, उतना अब वह नहीं देती। इसका कारण यही है कि न तो धरती की पूरी २ जुताई ही की जाती है और न धरती को आवश्यक खाद ही दी जाती है। जुताई और खाद की कमी का कारण यह है कि गांव में रहने वाले किसान गौवों का यथा विधि पालन करना सर्व्वथा भूल गये हैं। इस परिस्थित को स्वयं न जानने वाले पत्र सम्पादकगण, सम्पादकीय कुर्सियों पर बैठकर लिखा करते हैं कि हिन्दु लोग स्वार्थ त्याग पूर्व्वक गोरक्षा करना जानते हैं। बलि-हारी है ऐसे सम्पादक प्रवरों की और उनकी प्रशंसा पटु बुद्धि की। इधर अपालन रूप पाप भारतीय गोधन को चाटते चले जा रहा है, उधर पत्र सम्पा-दकगण अपने पाठकों को समझा रहे हैं कि हिन्दू लोग गोरक्षा करने में बहुत स्वार्थ त्याग करते हैं। मैं आज कई वर्षों से चिल्ला रहा हूं कि वर्त्तमान हिन्दू लोग गोपरिपालन की विधि को सर्व्वथा भूल गये हैं। इसी कारण भारतीय गोधन निरुपयोगी बनता जाता है और अन्त में कसाइयों के द्वारा लाखों की संख्या में प्रति वर्ष काटा जाता है इस प्रकार उसके काटे जाने के कारण खेती की उपज घटती जाती है। जनता दाने दाने के लिए मारी २ फिरती है। तौभी भारत के धनवानों और विद्वानों का ध्यान इस अवस्था को दूर करने की ओर तिलमात्र भी नहीं जाता। मुझ जैसा कोई जन उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहता है तो वे उसकी वैसी ही उपेक्षा करते हैं जैसे बलि पशु आसन्न मृत्यु की उपेक्षा कर बड़े प्रेम से हरी घास

खाता है। इस परिस्थिति को देख कर मुझे मर्मान्तक पीड़ा होती है। पर कुछ कर नहीं सकता।

हे भारत के नेतागणो, आप चर्खे और खद्दर का खूब प्रचार कीजिये। कौनसिलों में प्रस्ताव उपस्थित कर लम्बे चौड़े भाषण सुनाइये। भाषणों को सुना कर मुंह की खाइये पर इन कामों के साथ साथ अपने ग्रामीण तथा नागरिक भाइयों में गोपरिपालन की शास्त्रीय शिक्षा का भी प्रचार करते जाइये। मेरे इस कथन को सर्व्वथा निराधार मत मानिये कि हमारे किसान और नागरिक भाई गोपरिपालन की यथार्थ विधि को सर्वथा भूल गये हैं। इतना ही नहीं किन्तु जो लोग पिंजरा पोल और गोशालाओं के संचालक और मेम्बर बनने का अभिमान कर गोरक्षा की डींग मारा करते हैं वे तक गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता को नहीं समझते। गूलर का कीड़ा जिस प्रकार गूलर के फल को ब्रह्माण्ड माना करता है, उसी प्रकार गोशालादि संस्थाओं के संचालक यह माने बैठे हुए हैं कि उनकी पिंजरापोल वा गोशाला भारत भर की गौओं की रक्षा कर रही है। यथार्थ में उनकी संस्था, उनके आस पास के गांवो के गोधन तक की रक्षा नहीं कर सकती। अपालन के कारण उनके आस पास के गांवों का भी गोधन विकलांग होकर पन्द्रह आने कसाइयों के हाथों में जाया करता है और केवल एक आना उनके हाथों में जाया करता है। इस अवस्था में यही कहना पड़ता है। कि हमारे गोशाला संचालक गोहित की ओर आत्महित की चिन्ता से अभी कोसों दूर हैं।

लन्दन के मिशनरी लोग साहित्य द्वारा लन्दन में गोमांसाहार बन्द कर रहे हैं। यहां के गोरक्षक गोसाहित्य का उपहास करते हैं। ऐसी समझ वाले गोवंश का और अपना हित कहां तक कर सकते हैं इस बात का विचार विवेकी मात्र को करके गोधन के सुधार में एकदम लग जाना चाहिये। भारत सुधार का बीज मन्त्र गोधन सुधार ही है।

भक्ति ही सर्वोपरि है

[ले० श्री० स्वामी आत्मानन्द जी]

भक्ति नाम प्रेम युक्त श्रद्धा का है। जहां भगवत्, भक्ति और भागवत् तीनों एक हो जांय, उसी का नाम भक्ति है, यह भक्ति परम प्रेम स्वरूपा है, इसी को अनन्य भक्ति कहते हैं ऐसी अनन्य भक्ति सब साधनों का फल है। जब भक्त सब परिश्रमों से चरितार्थता को प्राप्त होता है. कोई कृत्य शेष उसके लिये करने को नहीं रहता, यानी अमुक काम करना है अमुक का फल भोगना है, इस प्रकार का कोई भी संकल्प नहीं रहता, इसी अवस्था का नाम यानी इस स्वरूप स्थिति का नाम ही भक्ति है इसीको वेदान्त में जीवन मुक्तिका विलक्षण सुख कहा है। यह ही बात निम्नलिखित गुरु शिष्य संवाद द्वारा स्पष्ट करके दिखाते हैं।

श्री भागीरथी गंगा के किनारे एक संत पर्ण कुटी में निवास करते थे, अधिकारी प्रति कर्म,

वैराग्य, उपासना, ज्ञान, भक्ति का हितोपदेश किया करते थे। एक दिन एक मनुष्य ने आकर विधिवत् साष्टांग दंडवत् कर सविनय प्रार्थना की।

मः—श्री महाराज! आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूं। मुझ अनाथ के आप ही नाथ हैं। मैं इस संसार सागर में कोटान कोट जन्मों से गोते खा रहा हूं, मुझ डूबते हुये की रक्षा कीजिये, और मुझको अपना शिष्य स्वीकार कीजिये।

सं—तुझको धन्य है, तेरे पुण्यों को धन्य है, कि तुझको संसार सागर से पार होने की उत्कृष्ट जिज्ञासा हुई है। शास्त्रोंने भी ऐसी जिज्ञासा वाले को संसार तारणी विद्या का अधिकारी बतलाया है। धैर्य्य धारण कर, मैं तुझ से संसार सागर से पार होने का उपाय कहूंगा। तेरा अंतःकरण शुद्ध है, तू मेरे बताये हुये उपायों का अनुष्ठान करके संसार सागर से मुक्त होकर ईश्वर भक्ति को प्राप्त होगा। सावधान होकर अपनी शंकाओं को कथन कर, मैं ठीक ठीक शास्त्रोक्त विधि, युक्ति और अनुभव द्वारा विधि पूर्वक समझाऊंगा।

शि—अंतःकरण शुद्धि की क्या पहिचान है? आपने अपने श्रीमुख से कथन किया है कि तेरा अंतःकरण शुद्ध है। हे भगवन्! इस बात को ठीक २ समझना चाहता हूं।

गु-जब मन विषयों में से राग को छोड़ दे और विषयों में सर्वदा वैराग्य को प्राप्त रहे, सुमति रूपी क्षुधा की वृद्धि हो, और नित नई भक्ति की चाहना हो, विषयों की आशा दुर्बल हो जाय, यहां तक कि कभी इच्छा भी न हो, तब जानना चाहिये कि अंतःकरण शुद्ध है।

शि—श्रीमहाराज! भक्ति की प्राप्ति का उपाय बताइये।

गु-जब तक अंतःकरण शुद्ध न हो तब तक वर्ण धर्मानुसार निष्काम कर्म करना ही भक्ति प्राप्ति का प्रथम उपाय है।

शिः—वैराग्य की क्या पहिचान है?

गुः-देखे व सुने विषय में चित्त राग को प्राप्त न हो, तृष्णा भी न करे, अनुकूलता प्रतिकूलता में मन समान रहे. किसी भी पदार्थ की सौंदर्य्यता असौंदर्यता मन को न खींच सके, मन ज्यों का त्यों डटा रहे, तब जानिये कि वैराग्य है, यही वैराग्य की पहिचान है।

शिः-दयानिधान! मन तो बड़ा चंचल है, बंदर की तरह नट खट है और मेरा मन तो नशेबाज बंदर के समान जानिये, किंचित भी स्थिर नहीं होता! मन स्थिर होने का उपाय बताइये।

गुः तेरे समान सभी का मन है, मन स्वभाव से ही चंचल है, इसका उपाय यही है, कि विषयों में से रोक कर अपने अभिलषित इष्ट में लगावे। ऐसी उपासना करने से मन वश में हो जावेगा। यहां तक कि चलाने से भी चलने में देरी करेगा।

शिः-श्री महाराज! उपासना का अर्थ समझाइये, उपासना की अवधि भी कहिये, और उपासना से क्या फल होता है. यह भी बताइये।

गुः-उप का अर्थ समीप है, 'आसन' नाम बैठने का है, इष्ट देव के समीप मन का आसन जमा देना ही उपासना है। इसी को योग शास्त्र में ध्यान कहते हैं, इष्ट के साथ एक तानता हो जाना ध्यान है। वेदांत में भी निर्विषयक मन को ही ध्यान कहा है। हे शिष्य! ध्यातृ ध्यान को परित्याग करके केवल एक ध्येय गोचर मन की वृत्ति को उपासना

की परम अवधि जान। ऐसा हो जाने पर मन वश हो जाता है, मन वश होने से अंतःकरण ठहर जाता है ठहरे हुये अंतःकरण पर परम देव का प्रतिबिम्ब पड़ता हुआ दृष्टि आता है। प्रतिबिम्ब तो सर्वदा ही पड़ता है, परंतु अंतःकरण वासनारूपी वायु से हिलता रहता है, और हिलने से अत्यंत चंचल हो जाता है, इसी कारण से पड़ता हुआ भी प्रतिबिम्ब साफ दृष्टि नहीं आता। जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब है, परंतु वायु के कारण हिलने, और मिट्टी के साथ में उठ आने से गदला हो जाता है। जब वायु ठहरती है, तब मिट्टी भी नीचे बैठ जाती है। जब जल हिलने से बंद होकर स्वच्छ हो जाता है तब सूर्य का प्रतिबिम्ब साफ दिखाई देता है, और हिलते हुये गदले जल पर पड़ते हुये भी साफ दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार अंतःकरण का हाल जानो, गदले अंतःकरण पर परम देव व्यापक का प्रतिबिम्ब पड़ते हुवे भी साफ दिखाई नहीं देता, ठहरे हुये अंतःकरण पर साफ दृष्टि आता है। तब उपासक परम देव को संशय विपर्य से रहित निश्चय पूर्वक जान लेता है, इसी का नाम ज्ञान है, यही उपासना का फल है।

शिः-हे भगवन्! अंतःकरण में मिट्टी क्या है जिससे अंतःकरण गदला हो।

गुः-हे शिष्य! विषयों की आसक्ति रूपी मिट्टी है, वह वासना रूपी वायु के चलने से उठती है, जिससे अंतःकरण गदला हो जाता है, और जब वासना रूपी वायु नहीं चलती तब आसक्ति रूपी मिट्टी नहीं उठती, उसी काल में परम देव का प्रतिबिम्ब देखने में आता है।

शिः-श्रीभगवन्? जिनकी आस्तिक बुद्धि है उन सबको ऐसा ज्ञान है ही, फिर इतने परिश्रम का क्या फल हुआ?

गुः हे शिष्य! तू कहता है सो ठीक नहीं है। सबको ऐसा ज्ञान नहीं होता, सबको सामान्य ज्ञान है। सामान्यता से किसी की साधकता बाधकता नहीं होती, विशेषता ही विशेषता का बाधक होती है। सम-सत्ता में साधकता बाधकता बनती है। जैसे सम सत्तावाले स्वप्न के पदार्थ आपस में साधकता बाधकता पहुंचासक्ते हैं, विषमसत्ता वाले जाग्रत के नहीं, इसी तरह जाग्रत में स्वप्न के नहीं। ऐसे ही सर्व के ज्ञान को जानो। सर्व का ज्ञान सामान्य है, वह पारमार्थिक सत्ताका है पारमार्थिक सत्ता व्यापक होने से किसी की साधक बाधक नहीं है। जब तक विशेष ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी, तब तक विशेष अज्ञान की निवृत्ति नहीं होगी। मैहूं' ऐसे सामान्य ज्ञान के होते हुये भी जब तक' मैं अकर्ता अभोक्ता हूं' ऐसा विशेष ज्ञान करके न जाने तब तक 'मैं कर्ता, मैं भोक्ता' जो विशेष अज्ञान है इस की निवृत्ति नहीं होगी। और यह विशेष ज्ञान कर्म वैराग्य उपासना बिना प्राप्त नहीं हो सक्ता, क्योंकि इनके द्वारा ही ईश्वर को व्यापक और अपने को उसके अंतर्गत निःसंशयतासे जानता है। जब अपना और परमात्मा का स्वरूप जाना जाता है, तब अपनी हस्ती कायम नहीं करता। यही आवरण रहित ज्ञान है। इसी ज्ञान से दुःख की निवृत्ति होती है। इसी ज्ञान से संसार रूपी चक्र से अलग होकर ईश्वर की शरण होता है। जब शरण होगया तब क्या बोझा रह गया? अब ईश्वर जाने ईश्वर का काम जाने! ऐसी प्रतीति हो जाने पर अपनी दृष्टि जो मिथ्या कल्पना कर रक्खी थी यह मैं हूं और ये मेरी है टूट जाती है,

और ईश्वर सृष्टि में यें निर्भयता से विचरता है। ऐसा होते ही भक्ति की दृढ़ता होती है। ईश्वर और अपनी अभेद रूप से स्थिति की प्राप्ति होती है इसीको अनन्य भक्ति कहते हैं। सामान्य ज्ञान जो 'तूने' सर्व को बनाया, वह सर्व को होते हुए भी भक्ति प्राप्ति नहीं करा सक्ता। जैसे काष्ठ में अग्नि सामन्यता से व्यापक होने पर भी विना मथन किये काष्ठ को नहीं जला सक्ती, इसी तरह विशेष ज्ञान के हुये विना सामान्य ज्ञान व्यापक होते हुये भी शुभाऽशुभ कर्म के जलाने को समर्थ नहीं है। जैसे पारस मणि पतले कागजके साथ लपेटी हुई लोहे की डिबिया में रक्खी होने पर भी, जब तक पतला कागज हटाया जाय, लोहेको सुवर्ण नहीं कर सक्ती, कागज हटाते ही विना प्रयास ही सुवर्ण बन जाता है। इसी तरह कर्ता भोक्तारूपी कागज़ लगाहुआ न हटाया जाय तब तक भक्ति की प्राप्ति नहीं होसक्ती। इस से हे शिष्य निस्संदेह होकर कर्ता भोक्तापने को हटाने का प्रयत्न कर, अनन्य भक्ति की प्राप्ति स्वाभाविक ही होगी। किंचित् भी संदेह मत कर।

शिः-अनन्यभक्ति का स्वरूप फिर से समझा इये, जिसको समझ कर अनन्य भक्ति की प्राप्ति का सप्रेम प्रयत्न करूं।

गुः-हे शिष्य! अनन्य भक्ति तो स्वाभाविक नित्य ही प्राप्त है। नित्य प्राप्त वस्तु की प्राप्ति क्या बनेगी, परंतु तूने उसीको स्त्री पुत्र धन शरीरादि में लगादिया है, इनमें से हटाले, बस तेरा यही कर्तव्य है। भक्ति स्वतः प्राप्त है। जैसे कुम्हार को घट बनाने तक ही प्रयत्न है, आकाश को कहीं से लाना नहीं पड़ता है। जैसे कूप खोदने तक ही क्रिया है, जल कहीं से लाना नहीं है, जल पहिले से ही मौजूद है। इसी तरह हमने जो विशेषता लगाली है वही हटाना है, क्यों कि वह हमने लगाई है, इसीसे हमको ही हटानी होगी। अनन्य भक्ति को कहीं से लाना नहीं है। स्वभाव में ज्यों के त्यों डट जाना और सब बनावटों को दिल से दूर कर देना ही अनन्य भक्ति है। यही परम भक्ति है। यह सर्वदा सर्व को नित्य प्राप्त है। परंतु अज्ञान से विषयों में लगा देने से टुकड़े वाली होगई है, अखंड होते हुये भी खंडसी प्रतीत होती है, और विषयों की बहुतायत से स्थिर नहीं रहती। ईश्वर एक है, इससे ईश्वर में भक्ति करने से भक्ति स्थिर होती है। ईश्वर अविनाशी है। इससे भक्ति भी अनपायिनी हो जाती है। भक्ति गले हुये रांगे के समान है, जैसे रांगा जिस सांचे में डाल दीजिये उसी सांचे के अनुसार देखने में आता है, वास्तविक में रांगा ज्यों का त्यों है, उसमें किंचित भी विकार नहीं हुआ, परंतु देखने में तो ऊंट घोड़ा आही जाता है इसी तरह अगर भक्ति को आगमापायि विषयों में डालोगे तो आगमापायि भक्ति होगी, और ईश्वर रूपी अविनाशी सांचे में डालोगे तो भक्ति अनपायिनी होगी। ईश्वर भक्ति ही जीव का स्वधर्म है, औरों की भक्ति प्रसंगानुसार ठीक और स्वधर्म कहने में आसक्ती है, परंतु ईश्वर भक्ति के सामने अन्य समस्त भक्तियां गौण हो जाती हैं। जैसे श्री कृष्णचंद्र भगवान् ने वंशी बजाई वंशी की धुन सुन गोपियां जैसी की तैसी श्रीभगवान् के सन्मुख आईं। श्री भगवान्बोले हे गोपियो! लौट जाओ, तुम अपने वर्णाश्रमधर्म के अनुसार अपने २ धर्म का तिरस्कार करके यहां आई हो, पतियों की भक्ति उलंघन करने से तुम च्युत होगई हो। इतना सुन गोपियों ने विनय पूर्वक कहा, हे श्री नंदनन्दन मनमोहन! हमलौट

जावेगी, परंतु हमारे प्रश्न का समाधान कर दीजिये श्रीभगवाने कहा अच्छा प्रश्न करो ! गोपियां बोलीं हे मुरारी घनश्याम प्राणों के प्राण श्री महाराज ? कोई एक स्त्री का पति परदेश गया हो और वह अपने पति की फोटो की सेवा कर रही हो, दैव वशात उसका पति उसके पास आकर खड़ा होजावे तो, हे भगवन् दीनदयाल बताइये ! कि वह फोटो की ही सेवा करती रहे, अथवा फोटो को छोड़ कर पति की सेवा में लगे ? इतना सुन श्री योगेश्वर भगवान् प्रसन्न हुये, और गोपियों के उत्कट भाव की प्रसंशा करने लगे, और उनको अपनी भक्ति का परम अधिकारी अपने श्रीमुख से अनेकों वार उद्धव के प्रति वर्णन किया धन्यवाद है, ऐसे प्रेम भक्ति वालों को, जिनकी कीर्तिको आज कल के भक्त अनुराग से गाकर संसार सागर से पार होने के लिये अन्तः करण शुद्ध कर रहे हैं। इसमें संशय नहीं हैं, माधव को भक्त ही प्यारे हैं और अनन्य भक्त तो परमप्यारे हैं। गोपियों का भाव यह था कि यहां के पति तो फोटो के समान हैं, सच्चे पति तो आप ही हैं। यहां के पति तो आप की फोटो हैं, आप उनके भी पति हैं यह हमको मालूम है, इसलिये हे जगत्पते ! आपकी शरण को प्राप्त हुई हैं। इसी तरह ध्रुव प्रहलाद वाली परशुरामादि ने और मीरां सहजो करमा आदि वाइयों ने अन्य धर्मो की अपेक्षा अपनी परम भक्ति को स्थित रक्खा, तो आज कोई माता पिता गुरु आदि की आज्ञा उलंघन करने का दोषारोपण नहीं करता, किंतु माननीय दृष्टि से उनके चरित्रों का सज्जन पुरुष अनुकरण करते हैं। इसी तरह राजा हरिश्चन्द्र की गाथा लोक प्रसिद्ध है कि सत्य में भक्ति को निश्चय करके, उस भक्ति के लिये अपनी कुल मर्यादा का ध्यान तक भी न लाया और अपनी स्त्री को शहर के चौराहे पर नीलाम करते हुये देख कर क्षत्री होकर भी विश्वामित्र की क्रूरता को स्वाभाविक सहन किया, धन्य है, ऐसे वीर को कि जिस की उपमा को कवि लोग युधिष्ठिर से भी बढ़ कर हेर रहे हैं। मोरध्वजादि भक्तों ने भक्ति का एक २ अंग ही ग्रहण करके कारण रूप अनन्यभक्ति को प्राप्त हुये, जिन्हों के यश कीर्ति गाने से ही अंतः करण शुद्ध होता है। तो भगवन् में भक्ति करने वालों को अनन्य भक्तिकी प्राप्ति में क्या संदेह है। परंतु सच्ची भक्ति हो, किसी ने सच कहा है साचा माटी का भला जो कहूं सांचा होय ! एक सच्चा भक्त कहता है प्रभु मेरो साचे मनका मीता, कब शिवरी काशी मे जाकर कब पढ़ि आई गीता, ताके वेर शिशुंभर खाये चाखि चाखि मन चीता। कहां तक कहा जावे, जो कर्म अपने लिये करने से पाप समझा जाता है, और वही कर्म ईश्वरार्पण कर देनेसे अपने फलकी अवधि को भी लांघकर अंतःकरण की शुद्धि करता है, यानी कर्म की अवधि स्वर्गादि है उनसे भी बढ कर अंतः करण की शुद्धि है इसकी प्राप्ति होती है जैसे एक मनुष्य अपनी कामना पूर्ति के लिये किसी को थोड़ा भी सतावे, उसी में सजा का भागी होता है। और वही आदमी फौज में भरती होकर सैकड़ों आदमियों को लड़ाईमें जानसे मारे तो निंदा व सजाके बदले कीर्ति और इनाम का अधिकारी होता है। इसी तरह ईश्वर भक्ति का हाल जानो। बहुत कहां तक कहें, ईश्वर भक्ति की पूर्णता होने पर अन्य सब भक्ति गौण होती हैं इस लिये हे शिष्य ! ईश्वर भक्ति परायण हो। इससे बढ कर मनुष्य के लिये कोई कर्तव्य नहीं है। मनुष्य शरीर ही साधन का घर और मोक्ष का दर-

बाजा है। उनको कोटान कोट धन्यवाद है, जो अहर्निश ईश्वर भक्ति में तत्पर हों और उनको भी धन्यवाद है जो आधा चौथाई आठवां सोलहवां चौबीसवां भाग भगवत् भक्ति में देते हैं और सर्व प्रकार से ईश्वर का ही भरोसा रखते है। हे शिष्य! शोचनीय तो वही हैं जो ईश्वर भक्ति से विमुख होकर माया मोहनी के भक्त हैं, और शुभाशुभ कर्म के चक्कर पर चढे हुये घटी यंत्र के सदृश कभी नीचे कभी ऊंचे चक्कर काटते हैं और सुखी दुःखी होते हैं। उनको भी धन्यवाद है, जो कुछ समय आधा घंटा पाव घंटा १० मिनट ५ मिनट तक ईश्वर भक्ति में लगाते हैं, अथवा लगाने की रुचि रखते हैं। उनको भी धन्यवाद है जो भगवत् भक्तों से प्रेम रखते हैं, क्योंकि किसी समय ऐसा करते २ ईश्वर परायण हो जावेंगे। बारबार शोचनीय दशा हर हालत में उन्हीं की है, जो जानते समझते हुये उपदेश सुनते हुये भी स्त्री पुत्र धनादि में अपनी शक्ति लगाये हैं। नाइन औरों के पैर तो धो आती है और अपने कभी नहीं धोती। 'गूजरी' रामनामरूपी नौका पर चढ़ कर रोज यमुना पार होवे, और उपदेश देने वाले पंडित जी काष्ठ की नौका के भरोसे इसी पार खड़े रह गये। इसी तरह औरों को उपदेश देने में चतुर आप ग्रहण नहीं करने वाले ऐसे पुरषों की ही अत्यंत शोचनीय दशा है। हे शिष्य! ऐसे पुरुष तारन कहे जाते हैं।

शिष्यः-हे भगवन्! तारन शब्द का अर्थ समझाइये। और भी जो आप ही पार गये हैं उनको क्या कहते हैं, और आप भी पार गये हैं औरों को भी पार ले जाने को समर्थ हैं, उनको क्या कहते हैं, ठीक २ मुझको समझाइये।

गुः-हे शिष्य! तारन उनको कहते हैं जो बहुत पढ़े लिखे और वाक्य विलास में बहुत चतुर समझाने में युक्ति द्वारा वस्तु को सिद्ध करने में समर्थ परंतु अपने लिये धारण करने में असमर्थ हैं ऐसे पुरुष तारन कहे जाते हैं।

दूसरेः-जो समझाने में समर्थ नहीं परन्तु समझने में समर्थ हैं औरों को युक्ति द्वारा समझा नहीं सक्ते परंतु अपना निश्चय गुरु द्वारा जो किया है वह अडिग है ऐसे पुरुष तरन कहे जाते हैं।

तीसरेः-जो आपभी अपने निश्चय में पक्के हैं और औरों को भी निश्चय कराने में युक्ति प्रमाण अनुभव द्वारा समर्थ हैं ऐसे पुरुष तरन तारन कहे हैं। इस प्रकार से तीन तरह के उपदेशक होते हैं।

हे शिष्य! तूतो परम अधिकारी है क्योंकि वैराग्य संपन्न है। धन्य है तेरे समान मनुष्यों को जो समस्त भावों को ईश्वरार्पण कर ईश्वर भक्ति परायण हुये हैं। अच्छा कुछ काल उपासना कर, उपासना सिद्ध होने के पश्चात् ज्ञान तत्पश्चात् भक्ति स्वतः प्राप्त होगी। तू किसी प्रकार का संदेह मत कर! शिष्य गुरु की आज्ञानुसार राम की उपासना में प्रवृत्त हुआ अंतः करण शुद्ध होने से थोड़े ही समय में नख से शिख तक भावानुसार मूर्ति प्रत्यक्ष होने लगी। तबतो भक्ति की उद्रेकता और भी हुई। यहां तक तदाकारता हुई कि अंत में मूर्ति लोप होगई तब तो शिष्य घबड़ा कर गुरुजी के पास पहुंचा, और रोने लगा कि मेरा ध्यान बिगड़गया, मेरे किसी पाप का उदय हुआ, जिसने ऐसा प्रतिबंध करदिया! आपकी शरण हूं, मेरी रक्षा कीजिये!

गुः-घबड़ा मत, तेरी उपासना बिगड़ी नहीं है, उपासना के परिपक्व होने का यही फल है। उपासक तीन प्रकार के हैं। मंद १ मध्यम २ तीव्र ३

है। जिसको तीन दृष्टांतों से तुम्हको समझाता हूं सावधानी से सुन, १ पत्थर, २ कपड़े की गुड़िया ३ नमक की डली।

१ पत्थर—पत्थर पानी के साथ थोड़ी देर भीगा रहता है पश्चात् वायु लगते ही सूख जाता है इसी प्रकार जिस उपासक का मन उपास्य देव में कुछ देर लगे। पश्चात् विषय रूपी वायु लगने से हट जाय, यह प्रथम का मंद उपासक है।

२. कपड़े की गुड़िया-गुड़िया पानी के साथ स्पर्श करने से पीछे भी कुछ काल तक भीगी रहती है। और भीतर भी भीग जाती है, इसी प्रकार पहिले उपासक से दूसरे उपासक में कुछ विशेषता है। भीतर तक भीग जाना और अधिक काल भीगी रहना वायु की आंधी चलने से सूखना ये गुड़िया में पत्थर से विशेषता है इसी तरह जिसकी उपासना उपासना काल से पीछे भी स्थित रहे और मामूली विषयों से चलायमान न हो, परंतु जब विषयों की आंधी चले तब स्थिर न रहे यह उपासक मध्यम है।

३. नमक की डेली-जल के साथ स्पर्श करते ही क्षण में जल रूप हो जाती है इसी प्रकार का तीसरा उपासक तीव्र कहलाता है।

एक तो उपासना काल में ही देव को जानते हैं। दूसरे-उपासना से अन्य काल में भी जानते हैं। तीसरे देव रूप ही हो जाते हैं इन तीन दृष्टान्तों से उपासना का स्वरूप समझना चाहिये। जब तक तू अलग साक्षात् देखता था तब तक सिर्फ ज्ञान था, अपने को और देव को पृथकता से व्यक्त ही मानता था अब इस ज्ञान की सीमा से निकल कर भक्ति महारानी के देश में आया है। अब तेरी और इष्ट की भिन्नता मिटगई है। तुझको इष्ट ने अपना लिया है, तेरे भेद भाव को तोड़ अभेद कर लिया है। अब तू और राम एकता को प्राप्त होगये। जैसे किसी ने कहा है।

गई पुतली नमक की, थाह समुद की लैन।
आपुहि गलि पानी भई, उलट कहे को बैन॥

इसी को स्वरूप स्थिति कहते हैं। द्वितीय में निश्चय करके भय ही है, भेद वादी भय को ही प्राप्त होते हैं और अभेद वादी ही शोक से पार होते हैं ऐसा वेद पुकार२ कर कहते हैं। जैसे जब तक अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् को भेद रूप से अलग जानता रहा तब तक शोक से पार नहीं हुआ जब गीता का उपदेश ग्रहण किया यानी सर्व भिन्नता भावको त्याग एक श्रीकृष्ण की शरणको अभेद रूपसे प्राप्त हुआ तत्पश्चात् पूछनेसे भी और अपने आपभी कहने लगा, कि महाराज मेरा मोह नष्ट हो गया, अब स्वरूप स्मृति को प्राप्त हुआ हूं, संदेह से गत होकर स्थित हूं पहिले भगवान् के सन्मुख बैठे रहने पर भी शोक दूर नहीं हुआ, जब अभेद रूप में स्थित हुआ तभी शोक से रहित हो कर सुखी हुआ।

श्रीभगवान् का वाक्य है कि जो मुझ को भजते हैं मैं उनको भजता हूं, क्षण भर भी अलग नहीं करता, जो जो क्रिया वे करते हैं सो सो क्रिया मैं भी करता हूं। भक्त मेरे जीवन प्राण हैं भक्तों का दिया खाता हूं, उठाते हैं तब उठता हूं, सुलाते हैं तब सोता हूं, चलाते हैं तब चलता हूं यहां तक कि उनकी प्रसन्नता में मेरी प्रसन्नता है, क्योंकि भक्त मुझको परम प्रिय हैं, और मैं भक्तों को परम प्रिय हूं। प्रतीति मात्र को मेरी भिन्नता है, वास्तविक मैं और भक्त एक ही हैं। भृगुने जब मेरे हृदय पर चरण प्रहार किया था, तब का मुझको कोमल चरणों की कोमलता

का ध्यान अब तक कंपा देता है कि मेरे कठोर हृदय में मेरे परम भक्त के चरण को कहीं कष्ट न हुआ हो। ऐसे श्रीभगवान् के वाक्यों को सुन कर किसका हृदय कठोर होगा, कि जो ईश्वर भक्ति करने में कमर बद्ध न हो। मेरी समझ में तो पत्थर भी पिघल जावेगा।

हे शिष्य! तूने भक्त माल तो पढ़ी है, देख भगवत् ने अपने भक्तों के साथ क्या क्या काम करने को रख छोड़ा है, यानी करने और न करने योग्य सभी काम किये। यहां तक कि सेवक बनने में किंचित् भी संकोच नहीं किया है, और भक्तों के लिये अब भी भक्तों की प्रसन्नता रखने के लिये किंचित् भी संकोच नहीं है, जहां भक्त जाते हैं उनसे पहिले पहुंच कर सब आराम का सामान तैय्यार करके रखते हैं, परंतु इस गुह्य विषय को भक्त ही अनुभव करते हैं शेष पामर विषयी तो बात के अधिकारी ही नहीं हैं, इन विचारों का अपराध नहीं है. क्योंकि इनके अनुभव रूपी नेत्रों पर अहंकार मोतियाबिंद छागया है। जब तक मुख्य नेत्रों का ही डाक्टर रूपी गुरु न मिले तब तक अन्य डाक्टर रूपी गुरुओं से मोतियाबिंद रूपी अहंकार का आपरेशन नहीं हो सक्ता। हे शिष्य! तू तो परम भक्तों की श्रेणी में गिनने के योग्य है। शांति को प्राप्त हो, घबड़ा मत, यही अनन्य भक्ति है, इसी की स्थिति का कुछ काल अभ्यास कर, स्वाभाविक हो जावेगी।

शिष्य दीर्घकाल तक आदर पूर्वक निरंतर स्थिति का अभ्यास कर दृढ भूमि को प्राप्त हुआ। और अपने निश्चय को पक्का करने के लिये श्री-गुरुजी से विनय पूर्वक बोला, 'श्रीमहाराज'! इधर की तोड़ उधर की जोड़ यही भक्ति है यही मुक्ति है।

गुः बस यही ठीक है, बस इतना ही है, यही परम अवधि है, अब आनंद से विचर, तुझको रंचक भी माया नहीं ठग सकेगी।

शिष्य ने गुरु को बारंबार कोटिशः साष्टांग दंडवत् कर आनंदपुर में जा बास किया। और अब भी आनंदपुर में रहता है, जिसको देखना हो देखले परंतु ज्ञान रूपी नेत्रों पर अहंकार रूपी आवरण न हो यानी मोतियाबिंद का डाक्टर रूपी गुरु-द्वारा आपरेशन किया गया हो, क्योंकि अपने आप आपरेशन हो नहीं सकता है इस में संशय नहीं है।

पाठको! सिद्ध पुरुषों का माया कुछ नहीं कर सक्ती। कबीर जी का कथन है।

माया क्या नैना सदावै, कबीरा तेरे हाथ न आवै।

श्री गोस्वामि तुलसीदास जी कहते हैं:-

उपर बरसै तृण नहिं जामा, संत हृदय जिम उपजन कामा।

महनत करने वाले महंत होते ही हैं, साधन करने वाले सिद्ध होते ही हैं, इसमें सन्देह ही क्या है?

पाठको! गुरु शिष्य संवाद को पढ कर चित्त अवश्य भक्ति करने को चाहता होगा। परंतु यही दशा चित्त की बनाये रहना, भूल नहीं जाना' इसी तरह सुखी होने का उपाय करोगे, तो अवश्य सुखी होकर विचरोगे।

इति ओ३म्

भजन

अपना हरि बिन और न कोई।
मातु पिता सुत बन्धु कुटुम्ब सब,
स्वारथ ही के होई ॥ १ ॥
या काया कूं भोग बहुत दे,
मरदन करि २ धोई।
सो भी छूटत नेक तनिक सी,
संग न चाली कोई ॥ २ ॥
घर की नारि बहुत ही प्यारी,
तिन में नाहीं दोई।
जीवत कहती साथ चलूंगी,
डरपन लागी सोई ॥ ३ ॥
जो कहिये यह द्रव्य आपनी,
जिन उज्जल मति खोई।
आवत कष्ट रखत रखवारी,
चलत प्रान ले जोई ॥ ४ ॥
या जग में कोई हितू न दीखै,
मैं समझाऊं तोई।
चरनदास सुकदेव कहे यों,
सुनि लीजे नर लोई ॥ ५ ॥

२

हमारे गुरु पूरण दातार।
अभय दान दीनन को दीन्हे, किये भव जल पार ॥१
जन्म २ के बन्धन काटे, जम की बन्ध निवार।
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरिधन दियो अपार ॥२॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावन हार।
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उजियार ॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजत ध्यान विचार।
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार ॥
आनन्द रूप सरूप मयी है, लिप्त नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारम्बार ॥ ५

३

आनन्द बरषत बुन्द सुहावन।
उमंगि उमंगि सत्गुरु वर राजित,
समय सुहावन भावन ॥ १ ॥
चहूं ओर घन घोर घटा आई,
सुन्न भवन मन भावन ॥ २ ॥
तिलक तत्तबेंदि पर झलकत,
जग मग जोति जगावन ॥ ३ ॥
गुरु के चरण मन मगन भयो जब,
बिमल बिमल गुण गावन ॥ ४ ॥
कहै गुलाल प्रभु कृपा जाहि पर,
हरदम भादो सावन ॥ ५ ॥

४

घट ही में चन्द चकोरा साधो,
घट ही में चन्द चकोरा ॥ टेक ॥
दामिनि दमकै घनहर गरजै,
बोलै, दादुर मोरा।
सत्गुरु मस्ती गस्त फिरावै,
फिरता ज्ञान ढंढोरा ॥ १ ॥
अदली राज अदल बादशाही,
पांच पचीसों चोरा।
चीन्हो सबद सिन्ध कर कीजै,
होना गारत गोरा ॥ २ ॥
त्रिकुटी महल में आसन मारो,
जहं न चलै जम जोरा।
दास गरीब भक्ति को कीजो,
हुआ जात है भोरा ॥ ३ ॥

५

अब तेरी सरने आयो राम ॥ टेक ॥
जबैं सुनिया साध के मुख, पतित पावन नाम ॥ १ ॥
यही जान पुकार कीन्ही, अति सताया काम ॥ २ ॥
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम ॥३॥

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥≈)
२.	सारसंग्रह	,,	≡)
३.	शब्दसंग्रह	,,	⅁॥
४.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	⅁
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	⅁।
६.	वेदोपनिषत्	,,	⅁
७	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	⅁॥।
८.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
९	भक्ति योग संग्रह	,,	≡)॥
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	⅁।

मिलने का पता:—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।